भारतीय वाङ्मय

हिन्दी तथा अहिन्दीभाषी क्षेत्रों के साहित्यिक-सांस्कृतिक समाचारों की मासिक पत्रिका

वर्ष 6 **अक्टूबर** 2005 **अंक** 10

किताबों की दुनिया निराली

किताबों की दुनिया सदा निराली।
किताबें दोस्त हैं सच्ची खयाली।
सभी की झोलियाँ भरतीं बराबर,
गया खाली न जो आया सवाली।
विचारों के गुलिस्ताँ में फिरायें,
किताबें वो बहारों की हैं माली।
सुनहली रोशनी ये आत्मा की,
रोशनाई भले इनमें हो काली।
पास जाकर ही जान पाओगे,
ये मन की मीत हैं कैसी निराली।
असुर अज्ञान का संहार करतीं,
खड्ग ले ज्ञान का, बन दुर्गा-काली।
अमावस के तिमिर को भेदती हैं,
शब्द के दीप की होकर दिवाली।
चलो क्यों आजमा नहीं लेते,
अब भी क्या कर रहे हीला-हवाली।
कही पर क्यों भरोसा करते हो,
मानो अपनी आँखों की देखी-भाली।

— डॉ० हरीशकुमार शर्मा
पासीघाट, (अ०प्र०)

किताबों से दूर जाते हुए

जिनके लिए रचे शब्द / वे ही मर गए
रौंदकर चले गए शब्दों को

पत्र, पत्रिकाओं और / किताबों का
जिनके लिए कोई अर्थ नहीं रह गया
शब्द जिनके लिए
निरन्तर हो रहे निरर्थक
किताबों से दूर जाते हुए / लोगों को
सरोकार नजर नहीं आता कोई

यह समझते हुए कि
यह बेहद दुखदायी है
संवेदना और सरोकार
जब पतन पथ पर हों तब बाजार का मायाजाल
शिकंजे में कस रहा हो
मनुष्य को देखना होगा आगे
बचाना होगा जो शेष है

कुरेदना होगा हमें / अपनी सोच की
उस चिन्गारी को / जिसके नीचे आम वर्ग
सोए-सोए ही झुलसने लगा है।

— विक्रम जनबंधु

मातृभाषा-राष्ट्रभाषा

कहा जाता है शिशु के लिए माता का दूध सर्वोत्तम होता है। माता का दूध शिशु को पोषण प्रदान करता है। रोग से लड़ने की क्षमता प्रदान करता है। डिब्बे का अप्राकृतिक दूध शिशु के लिए हानिकारक है।

मातृभाषा भी माँ के दूध के समान होती है, अंग्रेजी डिब्बाबन्द दूध के समान। मातृभाषा संस्कारों से जोड़ती है, परायी भाषा विदेश में पल्लवित कैक्टस के समान होती है, देखने में सुन्दर पर काँटे ही काँटे।

माता बच्चे को जन्म देती है, अपने दूध से पोषण करती है, उसकी भाषा (मातृभाषा) उसे प्रकृति, परिवेश, परिवार का बोध कराती है, उसे संवेदनशील बनाती है, उसका मानसिक विकास करती है।

किन्तु आज स्थिति यह है, सभी प्रदेशों में शासकीय, संस्थागत तथा निजी विद्यालयों में प्रारम्भिक स्तर से अंग्रेजी रटाई जा रही है, अंग्रेजी उनके मन-मस्तिष्क पर बोझ बनकर उनकी सहजता पर आघात कर रही है। अंग्रेजी बच्चों को अपनी जड़ों से अलग कर रही है। प्रारम्भिक शिक्षा की सरसता प्रभावित हो रही है। मातृभाषा की संवेदनशीलता को महत्त्व न देने के कारण शिक्षा भटक रही है।

गाँव, कस्बे, नगर के विद्यालय अंग्रेजी माध्यम शिक्षा के केन्द्र बनकर गौरव का अनुभव करते हैं, जबकि स्थिति यह है कि ऐसी शिक्षा बच्चों के बोध की सहजता को नष्ट कर रही है। अपनी जड़ों से कटकर क्या कोई वृक्ष पुष्पित-पल्लवित हो सकता है?

ज्ञान के द्वार में प्रवेश करने का माध्यम भाषा है। सहज बोधगम्य मातृभाषा पुस्तकें पढ़ने को प्रेरित करेंगी। पुस्तकों के जंगल में विचरण करने की प्रेरणा मिलेगी। बच्चों में कल्पना और विचारशक्ति जागृत होगी। अपने घर परिवेश में जो शब्द, जो भाषा सुनी जाती है वह मन-मस्तिष्क में स्पंदन और संवेदना जगाती है।

क्या यह चिन्ता का विषय नहीं है कि विद्यार्थी अपनी मातृभाषा हिन्दी, मराठी तथा विभिन्न भारतीय भाषाओं में अनुत्तीर्ण हो रहे हैं? यही नहीं, वे अन्य विषयों में भी पारंगत नहीं हो रहे हैं। इस पर विचार करने की अत्यधिक आवश्यकता है।

बच्चों को कक्षा 5 तक अपनी मातृभाषा (जिस प्रदेश की जो भाषा है) पढ़ाई जानी चाहिए। उसके बाद उन्हें अंग्रेजी का प्रारम्भिक ज्ञान कराना चाहिए। कक्षा 8 से एक तीसरी भाषा के रूप में हिन्दी (जिस प्रदेश की यह मातृभाषा नहीं है) संस्कृत या किसी प्रदेशीय भाषा का ज्ञान कराना चाहिए। इससे शिक्षा की संवेदनशीलता बनी रहेगी। बच्चों का मानसिक विकास होगा, अपनी प्रकृति और परिवेश से वे जुड़े रहेंगे।

प्रतिवर्ष 14 सितम्बर को 'हिन्दी दिवस' मनाकर हिन्दी का वार्षिक श्राद्ध करने की परम्परा त्याग कर देश में मातृभाषा की चेतना जागृत करनी चाहिए, तभी कामकाज में अंग्रेजी का महत्व घटेगा और हिन्दी को राष्ट्रभाषा की प्रतिष्ठा प्राप्त होगी। पहले माता, फिर समाज, फिर राष्ट्र सबके मिलने से राष्ट्रीय संस्कृति का सृजन होता है। जब तक देश की अन्य भाषाओं के प्रति लोक-आस्था नहीं बनेगी तब तक हिन्दी राष्ट्रभाषा नहीं बन सकेगी।

आज गंगा-यमुना को नर्मदा, गोदावरी, कावेरी से जोड़ने की बात की जाती है, पहले देश की भाषा को एक-दूसरे से जोड़िए तभी हम कह सकेंगे—

गंगे च यमुने चैव गोदावरी सरस्वती, नर्मदे सिंधु कावेरी, जले अस्मिन् सन्निधिं कुरु।

—पुरुषोत्तमदास मोदी

लोकार्पण

मिस्टर जिन्ना : इतिहास की पुनर्रचना

बायें से दायें : डॉ० महीप सिंह, श्री मोहन महर्षि, लोकार्पण करती हुईं सुश्री कृष्णा सोबती और श्री जोगिन्दर पाल

''आजादी की लड़ाई को कई दृष्टियों से देखा गया है मगर उसको सम्पूर्ण रूप से जानने का दावा नहीं किया जा सकता। **मिस्टर जिन्ना** नाटक में भी ऐसा नहीं किया गया है। इस नाटक में आजादी और विभाजन के जो मुद्दे उठाए गए हैं, उनमें इतिहास के साथ स्मृतियाँ भी काम कर रही हैं। जिन्ना की जिन्दगी के व्यक्तिगत सन्दर्भ और इतिहास की बातें यहाँ कुछ इस तरह गुँथी हुई हैं कि नाटक आकार लेता गया है। जिन्ना के किरदार को नरेन्द्र मोहन ने कई तरह से, कई तरफ से देखा है और उसे नाटक का रूप दिया है।'' ये शब्द हैं सुप्रसिद्ध लेखिका **कृष्णा सोबती** के जो उन्होंने नरेन्द्र मोहन के नाटक 'मिस्टर जिन्ना' का लोकार्पण करते हुए कहे।

संयोजकीय वक्तव्य देते हुए **डॉ० हरीश नवल** ने कहा कि नरेन्द्र मोहन ने इतिहास का मंथन करके जिन चरित्रों को हमारे सामने खड़ा किया है, वे अपनी संगतियों-विसंगतियों के साथ इतने जीवंत हो उठे हैं कि वे अपने समय के भी हैं और समय के बाहर भी। इतिहास को साहित्य में ढालने का जोखिम भरा काम नरेन्द्र मोहन ने इस नाटक में किया है।

डॉ० महीप सिंह ने नाटक में इतिहास के सर्जनात्मक उपयोग की बात उठाई और कहा कि **मिस्टर जिन्ना** इतिहास नहीं, इतिहास का पुन:सृजन है।

रंगकर्मी **आनन्द गुप्त** ने कहा कि सामयिकता इस नाटक की बहुत बड़ी शक्ति है। नाटक में नियोजित विरोधगर्भित स्थितियाँ इसे एक सफल नाटक बनाती हैं।

डॉ० सादिक ने जिन्ना के कई रूपों की चर्चा करते हुए कहा कि इस नाटक में जिन्ना को देखने का नजरिया बड़ा मानवीय है और यह नाटककार के विभाजन सम्बन्धी अनुभवों के बीच से फूटा है। **डॉ० सईद आलम** ने नाटक और भाषा के अंतसंबंधों की बात उठाते हुए कहा कि यह नाटक जिन्ना के बारे में बनी हुई परम्परागत धारणा को तोड़ने की ईमानदार-कोशिश है।

इस गोष्ठी का आयोजन 'शब्दसेतु' और 'उद्भव' की तरफ से दिल्ली के 'गाँधी शान्ति प्रतिष्ठान' में किया गया जिसमें हिन्दी के अलावा अन्य भारतीय भाषाओं के अनेक लेखक और रंगकर्मी उपस्थित थे। संगोष्ठी का सार्थक-सफल संचालन **डॉ० हरीश नवल** ने किया।

लोककाव्य के क्षितिज

डॉ० हरिसिंह पाल की समीक्षा कृति 'लोककाव्य के क्षितिज' का लोकार्पण **उपराष्ट्रपति श्री भैरो सिंह शेखावत** ने उपराष्ट्रपति निवास में किया। समारोह में विश्व हिन्दी समिति, अमेरिका, न्यूयार्क के महामंत्री तथा सौरभ पत्रिका के सम्पादक **वेद प्रकाश सिंह**, साहित्यकार **डॉ० हीरालाल बधौतिया, सुभाष सेतिया, डॉ० पुष्पापाल** आदि उपस्थित थे। उपराष्ट्रपति ने पुस्तक के लेखक डॉ० पाल को पुस्तक लेखन के लिए बधाई दी और कृति के माध्यम से लोककाव्य के संग्रह एवं संरक्षण के प्रयास की सराहना की।

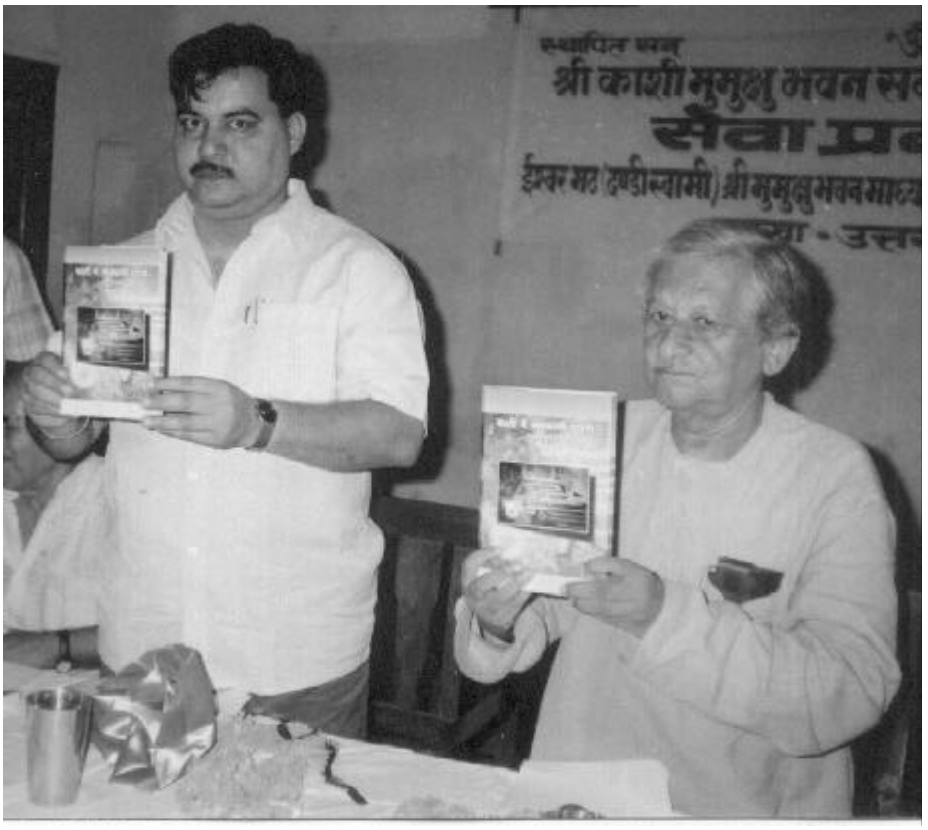

काशी में मोक्षकामी प्रवासी विधवाएँ
का लोकार्पण करते तत्कालीन प्रभारी जिलाधिकारी श्री लालजी राय तथा प्रो० बैद्यनाथ सरस्वती

काशी की जरूरत तो पूरी दुनिया को

दुनिया को काशी की जरूरत है, यह शहर ही ऐसा है। यहाँ लोग जरूरत पर आते हैं। इस शहर को किसी की जरूरत भले ही न हो, लेकिन इस शहर की जरूरत सभी को है।

यह विचार विश्वविद्यालय प्रकाशन की ओर से प्रकाशित पुस्तक 'काशी में मोक्षकामी प्रवासी विधवाएँ' के लोकार्पण पर वाराणसी के सीडीओ लालजी राय ने रविवार को अस्सी स्थित मुमुक्षु भवन सभा में व्यक्त किये। उन्होंने कहा कि धर्मशास्त्रों के अनुसार जीवन यात्रा के लिए चार पुरुषार्थ बताए गये हैं धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। अन्तिम लक्ष्य मोक्ष, यानी जीवन के सारे बन्धनों से मुक्त होकर परमेश्वर की शरणागति। यह शहर इसी मुक्ति का धाम है। पुस्तक के बाबत श्री राय ने कहा कि पुस्तक में व्यावहारिक और गम्भीर अध्ययन की प्रस्तुति है। मौके पर हुई पुस्तक परिचर्चा में प्रो० बैद्यनाथ सरस्वती ने कहा कि दुनिया में बदलाव की आँधी के दौरान वट वृक्ष के समान काशी आज भी अपने विशेषता के साथ विद्यमान है। अध्यक्षता प्रो० बासवानंद जुयाल ने की। मौके पर डॉ० बंशीधर त्रिपाठी, डॉ० सुषमा खन्ना आदि ने पुस्तक परिचर्चा में विचार रखे। अतिथियों का स्वागत पुरुषोत्तमदास मोदी ने किया तथा पुस्तक के बाबत लेखकद्वय सत्यप्रकाश मित्तल और रामलखन मौर्य ने विचार व्यक्त किये। पुस्तक लोकार्पण समारोह में मुख्य रूप से प्रो० नागेश्वर प्रसाद, डॉ० भानुशंकर मेहता, गोविन्दप्रसाद श्रीवास्तव आदि मौजूद थे।

राष्ट्रभक्ति अन्त्याक्षरी

उत्तरांचल के राज्यपाल श्री सुदर्शन अग्रवाल ने राजभवन में डॉ० गिरिजाशंकर त्रिवेदी द्वारा संकलित 'राष्ट्रभक्ति अन्त्याक्षरी' का लोकार्पण किया। उन्होंने कहा—स्वाधीनता आन्दोलन के समय राष्ट्रवादी कवियों ने राष्ट्रभक्ति की रचना कर जनमानस में राष्ट्रभक्ति की भावना को बढ़ावा दिया ताकि एक नव-चेतना जागृत हो। पहले अन्त्याक्षरी गाँवों के चौपाल में होती थी, आज फिल्मी अन्त्याक्षरी के रूप में पल्लवित हो रही है।

डॉ० त्रिवेदी ने अन्त्याक्षरी पुस्तकों के क्रम में साहित्यिक अन्त्याक्षरी और मानस अन्त्याक्षरी का भी संकलन-सम्पादन किया है।

'मृत्युबोध : जीवन बोध' कन्नड़ अनुवाद का लोकार्पण

डॉ० महेन्द्र भटनागर की काव्यकृति 'मृत्युबोध : जीवन बोध' का कन्नड़ अनुवाद श्रीमती शशिकला सुब्बण्णा ने प्रस्तुत किया। इसका लोकार्पण मैसूर महाराजा कालेज के अंग्रेजी प्राध्यापक प्रो० नागण्णा ने किया। उन्होंने कहा—देश में भावैक्यता की वृद्धि, भिन्न-भिन्न राज्यों में रहने वाले लोगों की परस्पर जानकारी की दृष्टि से श्रेष्ठ कृतियों का अनुवाद महत्त्वपूर्ण है।

श्रीमती शशिकला सुब्बण्णा ने इस दृष्टि में स्तुत्य कार्य किया है। इन्होंने मैथिलीशरण गुप्त की 'यशोधरा', जयशंकरप्रसाद की 'तितली' डॉ० हरिवंशराय बच्चन की 'मधुबाला', 'मधुकलश', विश्वकवि श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुरजी की अंग्रेजी काव्यकृति 'गीतांजलि' के कन्नड़ानुवाद किये हैं।

दलित लेखक की पुस्तक के लोकार्पण का बहिष्कार

प्रसिद्ध दलित लेखक डॉ० धर्मवीर आई०ए०एस० की पुस्तक 'प्रेमचंद : सामंतो का मुंशी' का लोकार्पण नामवर सिंह को करना था। डॉ० धर्मवीर ने पुस्तक में प्रेमचंद को न केवल सामंतों का समर्थक बल्कि स्त्री और दलित विरोधी भी बताया है। यह भी सिद्ध करने की कोशिश की है कि प्रेमचंद की एक रखैल भी थी।

पुस्तक के तथ्य ज्ञात होने पर नामवर सिंह के नेतृत्व में कई लेखकों ने इसका बहिष्कार किया। दलित लेखक संघ की अध्यक्ष विमल थोराट ने भी इसका विरोध किया।

करक कलेजे माहि का लोकार्पण

डॉ० लक्ष्मीमल सिंघवी, विष्णु प्रभाकर, इन्द्रकुमार गुजराल तथा महीप सिंह

सुप्रसिद्ध कथाकार-सम्पादक-पत्रकार डॉ० महीप सिंह का अमृत जयन्ती समारोह 23 अगस्त 2005 को इण्डिया इण्टरनेशनल सेंटर में आयोजित हुआ। समारोह में डॉ० कमलेश सचदेव द्वारा सम्पादित पुस्तक 'करक कलेजे माहि' का लोकार्पण करते हुए भू०पू० प्रधानमंत्री श्री इन्द्रकुमार गुजराल ने डॉ० महीप सिंह से अपने सम्बन्धों तथा मित्रता का स्मरण करते हुए कहा कि वे एक सहज, सरल, स्पष्टवादी व्यक्ति हैं।

मुख्य अतिथि डॉ० लक्ष्मीमल सिंघवी ने कहा कि महीप सिंह में व्यक्ति की चिन्ता गहरी है। मानव के अधिकारों के लिए वे संघर्षरत रहे हैं। महीप सिंह अपनी कहानियों में मानवीय सम्बन्धों को बड़ी सहजता से अभिव्यक्त करते हैं।

डॉ० अमरीक सिंह ने कहा—महीप सिंह मानवाधिकारों और मूल्यों के लिए निरन्तर संघर्षरत हैं।

डॉ० सुनीता जैन ने कहा—तनाव के क्षणों में उन्होंने उन्हें समुचित मार्गदर्शन दिया है।

डॉ० नरेन्द्र मोहन ने कहा—महीप सिंह की रचनाएँ तनाव में सहज होने का दर्शन प्रस्तुत करती हैं। उनकी प्रतिभा बहुमुखी है। वे सर्जक हैं—कहानियाँ तथा उपन्यास लिखे हैं, आलोचक हैं, सम्पादक हैं, पत्रकार हैं, समाज सेवक हैं, राजनीति में भी उनकी गहरी हिस्सेदारी रही है।

अध्यक्षीय भाषा में श्री विष्णु प्रभाकर ने सन् 1956 में प्रकाशित 'उलझन' कहानी से लेकर महीप सिंह की रचना यात्रा का स्मरण करते हुए कहा कि वे महीप सिंह से काफी हाउस में प्राय: मिलते थे तथा कहानियों पर उनके साथ चर्चा होती थी। महीप सिंह मित्र हैं। मित्रता को निभाने के लिए वे सदा तत्पर रहते हैं।

डॉ० महीप सिंह ने लेखकों, उपस्थित बुद्धिजीवियों तथा उनके प्रेम-स्नेह के प्रति कृतिज्ञता व्यक्त की। समारोह का संचालन अलका सिन्हा ने किया।

आपकी पत्रिका 'भारतीय वाङ्मय' में कई महत्त्वपूर्ण समाचार मिलते हैं, जो अन्यत्र अनुपलब्ध हैं। आप बहुत परिश्रम से इसका सम्पादन करते हैं। **—अखिल विनय,** मुम्बई

सम्पादकीय में आपके द्वारा व्यक्त चिन्ता असल में हर हिन्दी और हिन्दप्रेमी के मन की चिन्ता बनकर व्यक्त हुई है, लेकिन दुर्भाग्य है देश का यह कि जिनको यह चिन्ता करनी चाहिए वे तो सत्ता के मद में डूबकर इस ओर से आँख बन्द किये बैठे हैं।

'बोलती हैं तो चुप नहीं होती किताबें' में डॉ० बच्चन सिंह बड़े मार्मिक हैं, तो 'कलेजे में दुनिया का दर्द लिये जा रहा हूँ' में निर्गुणजी ने अपना मन खोलकर रख दिया है। इन दोनों लेखों ने इस अंक का महत्त्व बढ़ाया है। टुकड़ों-टुकड़ों में संयोजित सामग्री से 'भारतीय वाङ्मय' इतना विपुल विस्तार कर लेता है कि इससे जो मिलता है, वह कई अन्य पत्रिकाएँ मिलकर भी पूरा नहीं कर पातीं।

—डॉ० हरीशकुमार शर्मा, पासीघाटा

कथन

सौ लोग ऐसे हैं जो आपराधिक इतिहास होने के बावजूद लोकसभा सदस्य बनने में सफल रहे हैं। देश आज मौलिक बदलावों के लिए व्यग्र है—ऐसे बदलाव जिनसे समाज में रचनात्मकता एवं सृजनात्मकता को मजबूती मिले और सार्वजनिक जीवन के महत्त्वपूर्ण पदों पर प्रतिबद्ध तथा संवेदनशील लोगों की उपस्थिति सुनिश्चित होती हो। यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि हमारे राष्ट्रीय नेतृत्व का कोई भी व्यक्ति ऐसे बदलाव लाने के प्रति अपना मस्तिष्क नहीं खपा रहा है। केवल राजनीतिक नेतृत्व ही नहीं, राष्ट्र को तो बौद्धिक, सांस्कृतिक और सामाजिक—सभी क्षेत्रों में नेतृत्व की कमी खल रही है। **—जगमोहन,** पूर्व केन्द्रीय मंत्री

❑ ❑ ❑

सिर्फ कानून से देश नहीं बदलता। जरूरत है तो केवल लोगों को जागरूक करने और समाज-सुधार की, लोगों की सोच बदलने की, लोगों में रचनात्मक सोच लाने की। अधिक से अधिक लोगों को शिक्षित करने की और आपसी भेदभाव दूर करने की। आज सभी लोग अधिकार की बात तो करते हैं लेकिन कर्त्तव्य नहीं निभाते। गाँधीवादी हूँ। गाँधीजी ने कहा था आप अपना कर्त्तव्य पूरा करें, अधिकार अपने आप मिल जायगा, लेकिन ऐसा करता कोई नज़र नहीं आता।

—मौलाना वहीदुद्दीन खान
इस्लामी विद्वान और चिंतक

❑ ❑ ❑

विद्या चार प्रकार से आत्मसात होती है। पहला है—अध्ययनकाल। यहाँ विद्या मिलती है और वह परिपक्व होती है। दूसरा है मनन काल। इसके बाद आता है प्रवचन काल। इस काल में जो सीखा जाता है उसे दूसरों तक पहुँचाया जाता है। इसके बाद आता है, इन तीनों की व्यावहारिक परिणति जिसे उपयोग काल कहा जाता है।

—पतंजलि

यत्र-तत्र-सर्वत्र

कामायनी की गोष्ठी में

भारतेन्दु और अंग जनपद

भारतेन्दु के साहित्य पर अंग जनपद के जीवन का प्रभाव शीर्षक विचार-गोष्ठी की अध्यक्षता करते हुए कथाकार **शिवकुमार मिश्र** ने कई महत्त्वपूर्ण बातों की ओर इशारा करते हुए कहा कि भारतेन्दु के काव्य में विसंगतियों के विरुद्ध खड़ा होने की जो प्रवृत्ति तेज है, वह अंग जनपद के वामपंथी मिजाज के कारण। भारतेन्दु के सम्पूर्ण जीवन का आधा हिस्सा अंग जनपद के संताल परगना के एक हिस्से में बीता था। वह हिस्सा उनकी जन्मभूमि ही नहीं, साहित्य की कर्मभूमि भी रहा है। यह जनपद शुरू से धार्मिक कुरीतियों के विरुद्ध रहा है, जिसका स्वर सिद्ध कवियों में बहुत पहले फूट चुका था।

नाट्यकर्मी **रंजन कुमार** ने कहा कि भारतेन्दु ने पारसी नाटकों के प्रभाव से हिन्दी नाटकों को बचाने का जो प्रयास किया और उसकी जगह जिस नाट्य शैली को ग्रहण किया, उसमें इस जनपद की नाट्यशैली का भारी प्रभाव देखा जा सकता है। अंजनपद के दक्षिणी हिस्से में जिस भागवत् कीर्त्तन की प्रमुखता रही, भारतेन्दुजी ने उसी को प्रमुखता के साथ अपनी कविताओं में स्वीकार किया।

इस अवसर पर **डॉ० अमरेन्द्र** ने कहा कि जिस भारतेन्दु ने अपने जीवन के पन्द्रह-बीस साल अंग जनपद के राजमहल में बिताया था, उस समय उनकी मातृभाषा सिर्फ अंगिका रही होगी, उन्होंने अपनी जिन्दगी सिर्फ फारसी या बंगला सीखने में नहीं बिताई होगी, बनारस तो अपने पिता की मृत्यु के बाद वह गए, वह भी नहीं जाते, अगर विमाता से उन्हें तकलीफ नहीं मिलती।

युवा राष्ट्र की निधि

देश के युवा राष्ट्र की निधि बन सकते हैं यदि राष्ट्र उसकी क्षमताओं का समुचित निवेश करे। **प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह** ने ज्ञान आयोग (नॉलेज कमीशन) की शुरुआत करते हुए कहा—इस निवेश की उपेक्षा करने से युवक सामाजिक और आर्थिक दायित्व बन जायँगे। यह ज्ञान की शताब्दी है। मेरा विश्वास है कि सैन्य अथवा आर्थिक शक्ति से विश्व में राष्ट्र को स्थान नहीं मिल सकता, यह मानसिक शक्ति (बौद्धिक क्षमता) है जो विश्व में किसी देश को स्थापित करेगी।

आज प्रत्येक स्तर पर गुणवत्तायुक्त शिक्षा की अपेक्षा है। ज्ञान के पिरामिड (नॉलेज पिरामिड) के तल में चुनौती है प्राथमिक शिक्षा का उन्नतिकरण। पिरामिड के शीर्ष पर उच्च शिक्षा संस्थाएँ हैं जिन्हें विश्व स्तर की शोध करानी चाहिए।

हमारे विश्वविद्यालय और शिक्षा के विशिष्ट केन्द्र विश्व में मानवीय क्षमता और भौतिक संसाधन के सन्दर्भ में बहुत पीछे हैं।

विद्यालयीय कविता कार्यशाला

साहित्य अकादमी, म०प्र० संस्कृति परिषद् और भारतीय बाल शोध संस्थान ने 27 से 30 अगस्त 2005 को विद्यालय स्तर पर चार दिवसीय विद्यालयीय कविता कार्यशाला का आयोजन किया। कार्यशाला में 15 विद्यालयों से चयनित 47 बाल कवियों ने पूरे मनोयोग से प्रशिक्षण प्राप्त किया। कार्यशाला में प्रशिक्षक के रूप में हिन्दी के बाल-विधा विशेषज्ञ सर्वश्री **राष्ट्रबन्धु** (कानपुर), **श्रीकृष्ण शलभ** (सहारनपुर), **डॉ० राजेन्द्र मिश्र** (इन्दौर), **डॉ० सुरेन्द्र विक्रम** (लखनऊ), **जगदीश तोमर** (ग्वालियर), **रामनारायण त्रिपाठी 'पर्यटक'** (लखनऊ), **डॉ० पद्मा सिंह, गीरेन्द्र सिंह भदौरिया, गोपाल माहेश्वरी, सुषमा यादव** और **कामना कनौजिया** ने कई सत्रों में गम्भीर प्रशिक्षण दिया।

शुभारम्भ के अवसर पर साहित्य अकादमी के निदेशक डॉ० देवेन्द्र दीपक ने कहा कि इस कार्यशाला से बच्चे कविता को लेकर जो संस्कार प्राप्त करेंगे, वे बाल-मन को निखारने में अहम भूमिका निभाएँगे।

शिक्षा विभाग
रिश्वतखोरी में भी अव्वल

पूरे देश में प्रतिवर्ष 21 हजार करोड़ रुपये की रिश्वतखोरी होती है, उसमें शिक्षा विभाग के अधिकारी अकेले 4137 करोड़ डकार जाते हैं। रिश्वतखोरी के मामले में शिक्षा विभाग के अधिकारी पुलिस विभाग के अधिकारियों को पीछे ढकेलते हुए सबसे आगे निकल गये हैं।

'ट्रांसपेरेंसी इण्टरनेशनल इण्डिया' (टीईई) की खोज कहती है कि रिश्वत माँगने वालों में शिक्षा विभाग के अधिकारी / कर्मचारी सबसे अधिक मुँहफट हैं, ये छोटे से काम के लिए भी 'सुविधा शुल्क' के लिए मुँह खोल देते हैं, उन्हें इस बात को जरा भी फिक्र नहीं होती है कि सामने वाला व्यक्ति कौन है ?

रामदरश मिश्र से संवाद

डॉ० रामदरश मिश्र ने अपने अध्यापक जीवन के आठ वर्ष (1956 से 1964) गुजरात में बिताए। न वे गुजरात को भूल सके, न गुजरातवासी उन्हें भूल सके हैं। 21 अगस्त 2005 को उमा आर्ट्स कॉलेज, गाँधीनगर के सभागार में रामदरश मिश्र पर केन्द्रित 'संवाद रचनाकार से' कार्यक्रम का आयोजन हुआ। गुर्जर भारती के अध्यक्ष डॉ० महावीर सिंह चौहान, मिश्रजी के शिष्य और साहित्यकार डॉ० चन्द्रकान्त मेहता, डॉ० भोलाभाई पटेल, शिष्य रघुवीर चौधरी, प्रा० नियाज पठान, डॉ० सूर्यदीन यादव, डॉ० ओमप्रकाश गुप्त, आलोक गुप्त ने रामदरशजी के अध्यापन वर्ष के संस्मरण सुनाए तथा उनकी कृतियों पर संवाद-चर्चा की। रामदरशजी ने कहा—गुजरात में मैंने जीवन के महत्त्वपूर्ण वर्ष व्यतीत किये हैं, यहाँ मुझे और मेरे रचनाकार को बहुत कुछ सीखने को मिला है। गुजरात की ऊष्मा आज भी महसूस कर रहा हूँ।

23 अगस्त को गुजरात यूनिवर्सिटी के हिन्दी विभाग की अध्यक्ष डॉ० रंजना अरगड़े ने मिश्रजी का स्वागत किया। मिश्रजी ने अपनी कविताएँ सुनाईं। मिश्रजी के शिष्यों और समकालीनों की उपस्थिति ने काव्य पाठ को ऐतिहासिक बना दिया।

हरिशंकर परसाई की कहानी का नाट्य मंचन

'मैं नरक से बोल रहा हूँ' का एक दृश्य

भारतीय भाषा परिषद के निमंत्रण पर विवेचना रंगमंडल ने कोलकाता नगर में साहित्यिक एवं सांस्कृतिक कार्यक्रमों की प्रस्तुति की। उन्होंने पारम्परिक नाटकों की बजाय हरिशंकर परसाई की कहानियों का कोलाज बनाकर 'मैं नरक से बोल रहा हूँ' नाटक मंचित किया। परसाईजी की रचनाओं का मारक व्यंग्य और बेधक विनोद उनकी अगली नाट्यकृति 'निठल्ले की डायरी' में भी स्पष्ट हुआ। तीसरे दिन उन्होंने विभारानी के निर्देशन में 'पीर पराई' लोकनाट्य अभिनीत किया। इन सभी प्रस्तुतियों में अरुण पाण्डेय के कुशल निर्देशन व नवीन चौबे के संचालन की छाप देखी जा सकती थी। विवेचना रंगमंडल ने परिषद के मंच से सुभद्रा कुमारी चौहान की अमर कविताओं का सांगीतिक मंचन किया। 'खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसीवाली रानी थी' कविता को श्रोताओं ने 'एक बार और' की पुकार लगा कर फिर फिर सुना। निराला, मुक्तिबोध, आलोक धन्वा, भगवत रावत, उदय प्रकाश, निरंजन श्रोत्रिय, एकांत श्रीवास्तव आदि की छंदमुक्त कविताओं का प्रस्तुतीकरण मौलिक व आकर्षक था। कार्यक्रमों में सोनिया सिंह, सिल्की जैन, मोना गुप्ता, रिया बनर्जी, मनीष तिवारी, अभिषेक गौतम, तुषार सरकार, विवेक पाण्डेय, संतोष राजपूत आदि का अभिनय व गायन सराहनीय रहा। डॉ० सुयोग्य पाठक का संगीत निर्देशन मंजा हुआ था।

'बूँद और समुद्र' की अर्द्धशती

प्रेमचंद की 125वीं जयन्ती के अवसर पर 31 जुलाई 2005 को लखनऊ में 'संचित स्मृति' और

'सरोकार' के तत्वावधान में यथार्थवादी उपन्यासकार अमृतलाल नागर के महाकाव्यात्मक उपन्यास 'बूँद और समुद्र' की अर्द्धशती पर श्री कुमुद नागर की अध्यक्षता में आयोजित हुई। संगोष्ठी के मुख्य अतिथि **श्री हरिचरण प्रकाश** थे। प्रेमचंद की कहानियों व उपन्यासों के विविध पक्षों पर उग्रनाथ नागरिक, के०बी० सिंह, डॉ० शरद नागर, धनंजय आदि ने बहुकोणीय चर्चा की।

इस क्रम में अमृतलाल नागर के उपन्यास 'बूँद और समुद्र' की अर्द्धशती के परिप्रेक्ष्य में हुई संगोष्ठी में डॉ० मंजरी खन्ना ने नागरजी की कृति 'गदर के फूल' पर आलेख-पाठ कर विशद मूल्यांकन प्रस्तुत किया। बन्धु कुशावर्ती ने अपने आलेख 'छायावादोत्तर आंचलिक तथा लेखन के प्रथम पुरुष—अमृतलाल नागर' में कहा कि हिन्दी में उन्नीसवीं सदी के अन्त से शुरू हुआ आंचलिक कथा-लेखन शिवपूजन सहाय की 'देहाती दुनिया' पर आकर ठिठक गया था। नागरजी ने 'नवाबी मसनद' और 'सेठ बाँकेमल' जैसी अपनी रोचक कृतियों के बाद, प्रेमचंद के यथार्थवादी-लेखन की परम्परा में 'बूँद और समुद्र' लिखकर आंचलिक कथा-लेखन को बिल्कुल नया फलक दिया। इससे 'रंगभूमि' के बाद सचमुच हिन्दी को पहला बड़ा और महाकाव्यात्मक उपन्यास मिला। श्री जगतपति शरण निगम ने इस संगोष्ठी की अध्यक्षता की।

बिहार के सार्वजनिक पुस्तकालय

बिहार में पाँच हजार सार्वजनिक पुस्तकालय हैं, जो नष्ट हो रहे हैं। प्रदेश में पुस्तकालय अधिनियम न होने से नष्ट हो रहे हैं। बिहार राज्य पुस्तकालय संघ ने सरकार से माँग की है कि इस अधिनियम को अविलम्ब बनाया जाय। 1983 से इसके लिए प्रयास किया जा रहा है।

बिहार में 5000 ग्रामीण पुस्तकालय, सिन्हा लाइब्रेरी, सात प्रमण्डली पुस्तकालय, छह राज्य पुस्तकालय, 25 जिला पुस्तकालय, 20 अनुमण्डल पुस्तकालय, 50 प्रखण्ड पुस्तकालय हैं जिनकी स्थिति निरन्तर खराब होती जा रही है। केरल, तमिलनाडु, कर्नाटक, महाराष्ट्र, पश्चिम बंगाल, मणिपुर, हरियाणा आदि राज्यों में पुस्तकालय अधिनियम हैं।

अंडमान की जनजातियाँ हिन्दी अपना रही हैं

आजकल पढ़े लिखे अंडमान निकोबार द्वीप समूह के दूर दराज के क्षेत्रों में रहने वाली पाषाणयुगीन जनजातियाँ तेजी से हिन्दी अपना रही हैं। ये लोग न सिर्फ धाराप्रवाह हिन्दी बोलते हैं बल्कि उनकी तरक्की भी प्रभावशाली है। भारतीय नृविज्ञान सर्वेक्षण के अंडमान के प्रभारी आस्टिन जस्टिन के अनुसार अंडमान की जनजातियों के लोग हिन्दी लिखना तो नहीं जानते लेकिन बोलना जानते हैं। आज के समय में जारवा, अंडमानी और शोम्पेन जनजातियों के लोग बाहरी दुनिया के साथ बातचीत में हिन्दी अपना रहे हैं।

सम्मान-पुरस्कार

कमल किशोर 'भावुक' पुरस्कृत

भाऊराव देवरस सेवा न्यास, लखनऊ द्वारा 'पं० प्रतापनारायण मिश्र स्मृति-युवा साहित्यकार सम्मान' 4 अक्टूबर 2005 को युवा कवि कमल किशोर भावुक को दिया गया। सम्मान स्वरूप पाँच हजार रुपये की सम्मान राशि, प्रतापनारायण मिश्र साहित्य, अंगवस्त्रम तथा स्मृति चिन्ह प्रदान किया गया।

राष्ट्रकवि ओगेती अच्युतराम शास्त्री स्मृति संस्कृत सम्मान

श्री वेद भारती, हैदराबाद ने 21 अगस्त 2005 को संस्कृत दिवस के अवसर पर संस्कृत कालेज, मिर्जापुर के पूर्व प्रोफेसर डॉ० राधामोहन उपाध्याय को उनकी संस्कृत सेवा के लिए आन्ध्र प्रदेश के पूर्व न्यायमूर्ति श्री पी० कोडण्डा रमैय्या की अध्यक्षता में राष्ट्रकवि ओगेती अच्युतराम शास्त्री स्मृति संस्कृत सम्मान प्रदान किया गया। डॉ० उपाध्याय पश्चिमी बंगाल की अनेक शिक्षा संस्थाओं में प्रमुख पदों पर आसीन हैं। उनकी प्रमुख कृतियाँ हैं—आधुनिक हिन्दी व्याकरण, संस्कृत सहचर, भण्डाफोड़ (नाटक), नेताजी का आत्मदर्शन, राष्ट्रीय एकता की खोज, भारतीय जातिवाद एवं मिथक, सागरी पताका (उपन्यास, प्रकाशक : विश्वविद्यालय प्रकाशन), शिक्षा का अगवाकरण बनाम भगवाकरण, शिक्षा का विकृतिकरण, भारत विजयम् (संस्कृत महाकाव्य 40 सर्ग में)।

'मधुवन' द्वारा मनीषियों का अलंकरण

'मधुवन' समारोह में मध्यप्रदेश के मुख्यमंत्री श्री बाबूलाल गौर कबीर गायक श्री प्रहलाद सिंह टिपानिया को सम्मान प्रदान करते हुए

सृजन और साधना में लीन देश की विभिन्न विभूतियों को उनकी उल्लेखनीय उपलब्धियों के लिए भोपाल की बहुप्रतिष्ठित सांस्कृतिक संस्था 'मधुवन' ने श्रेष्ठ कला आचार्य की मानद उपाधि से अलंकृत किया। गुरु वंदना महोत्सव के नाम से हर साल आयोजित होने वाले इस सांस्कृतिक अनुष्ठान में म०प्र० के राज्यपाल डॉ० बलराम जाखड़ तथा मुख्यमंत्री श्री बाबूलाल गौर ने पद्मविभूषण सरोदवादिक शरन रानी, चित्रकार महाराजा रणजीत सिंह गायकवाड़, साहित्यकार डॉ० श्यामसुन्दर दुबे, संस्कृति कर्मी डॉ० सागरमल जैन, संगीतज्ञ श्री नंदन मेहता, पत्रकार श्री दिनकर शुक्ला, लोकगायक श्री प्रहलाद सिंह टिपानिया, छायाकार श्री मनोहर काजल जैसे विविध विधाओं के सृजनधर्मियों तथा सांस्कृतिक पत्रकारिता के क्षेत्र में रचनात्मक सक्रियता के लिए 'कला समय' के सम्पादक श्री विनय उपाध्याय को अलंकृत किया। मनीषियों के प्रति सामाजिक कृतज्ञता के ज्ञापन का यह सार्वजनिक उत्सव 'मधुवन' की चालीस वर्षीय साधना का प्रतिनिधि समारोह है। संस्था के सचिव और आयोजनधर्मिता के कुशल शिल्पी श्री सुरेश तांतेड़ इसे लोक आस्था, लोक श्रद्धा और लोक चेतना की विनम्र अभिव्यक्ति बताते हैं।

प्रो० सोनवणे राजेंद्र 'अक्षत' को सम्मानोपाधियाँ

बीड (महाराष्ट्र) से प्रकाशित होनेवाली अखिल भारतीय मायाराम सुरजन ग्रामीण पत्रकारिता पुरस्कार प्राप्त पत्रिका 'लोकयज्ञ' के सम्पादक प्रकाशक प्रो० सोनवणे राजेंद्र 'अक्षत' को खानकाह सूफी दीदार शाह चिश्ती ट्रस्ट कल्याण द्वारा 'राष्ट्रभाषा रत्न' व अन्तर्राष्ट्रीय पराविद्या शोध संस्था ठाणे की ओर से 'हिन्दी साहित्यालंकार' की सम्मानोपाधियाँ प्राप्त हुई है।

निरालाजी की सादगी

वर्ष 1948 की बात है। महाकवि पं० सूर्यकांत 'निराला' को जबलपुर के हितकारिणी महाविद्यालय के कवि सम्मेलन में आमंत्रित किया गया था। वह रेल के तीसरी श्रेणी के डिब्बे में बैठे तथा जबलपुर पहुँच गए। उन्हें लेने गए छात्र समझ रहे थे कि वह द्वितीय श्रेणी के डिब्बे में मिलेंगे। न मिलने पर छात्र निराश हुए। अचानक एक फटे हुए लम्बे कुरते वाले लम्बे-चौड़े व्यक्ति को देखकर छात्र समझ गए कि यही महाकवि निराला होंगे।

निरालाजी के जय-जयकार से प्लेटफार्म गूँज उठा। एक छात्र नेता ने जब देखा कि निरालाजी का कुरता फटा हुआ है, तो दुकान से लम्बा-चौड़ा एक कुरता खरीदकर उसने निरालाजी को भेंट कर दिया। वह हँसकर बोले, ''बच्चों के कवि सम्मेलन में आने का फायदा हुआ। नया कुरता मिल गया।''

मंच पर जैसे ही उन्होंने अपनी कविता 'जागो फिर एक बार' जोश से सुनाई कि हाथ लगने से नए कुरते की दाईं जेब फटकर मंच पर गिर गई। निरालाजी हँसकर बोले, ''हम जैसा कुरता पहनकर आए थे, वैसा ही फटा पहनकर वापस लौटेंगे।'' पूरा पण्डाल हँसी से गूँज उठा। कवि सम्मेलन के बाद निराला ने पूछा, ''सुभद्राकुमारी चौहान कहाँ हैं?'' उन्हें बताया गया कि वह जेल में हैं। निरालाजी उनके घर पहुँचे। बच्चों को रुपये दिये तथा आशीर्वाद देकर बोले, ''अपनी माँ की तरह तेजस्वी देशभक्त बनना।''

—शिवकुमार गोयल

आपका पत्र

'...मैकाले का भारत' में हिन्दी दुर्दशा पर आपकी व्यथा वाजिब है। आजादी से पहले जब हमारे राजनेताओं को जनता के करीब पहुँचने के लिए हिन्दी / हिन्दुस्तानी की जरूरत होती थी तो क्या कारण है कि स्वातंत्र्योत्तर भारत में वे अंग्रेजी को अधिक पुख्ता करते चले गए। दोषी कहीं न कहीं हिन्दीभाषी राज्य—वहाँ की जनता भी है। एकाध राज्य हिन्दी को वास्तविक राजभाषा का दर्जा दिलवाने में रुकावट बन सकते थे तो कथित रूप से ये राज्य हिन्दीभाषी राज्य क्यों नहीं अड़ सकते थे, अपनी मातृभाषा के—राष्ट्रभाषा के सम्मान की खातिर। लगता है हमारी मानसिकता में हिन्दी को मातृभाषा मानने की बजाय क्षेत्रीयता अधिक हावी है। **—डॉ० मधुसूदन शर्मा**
पासीघाट (अरुणाचल)

'भारतीय वाङ्मय' का अगस्त अंक मिला। प्रेरणा सारवान की कविताएँ और डॉ० बच्चन सिंह का लेख किताबों का, किताबों से प्रेम करनेवालों का सच्चा दु:ख वर्णन करता है। क्या करें लेकिन हम! क्या पढ़ना छोड़ दें? कोई भी नई किताब खरीदते वक्त हाथ काँप जाते हैं। कहाँ रखेंगे? कब तक रखेंगे? देंगे किसको। रद्दीवाला भी नष्ट करके लेगा। **—राजेन्द्र उपाध्याय,** दिल्ली

सम्पादकीय हमारी अंग्रेजीपरस्त मानसिकता की पड़ताल करता है। वास्तव में भारत में अभी तक मैकाले के विचारों का ही पल्लवन-पुष्पन हो रहा है। वैश्वीकरण ने इस वैचारिक गुलामी को और अधिक सुदृढ़ आधार प्रदान किया है। अब तो सब कुछ बिकाऊ हो गया है। जो बिकता नहीं वह निरर्थक है, जो उपादेय नहीं वह त्याज्य है। पता नहीं ऐसी विकलांग सोच हमें कहाँ ले जाएगी
—डॉ० वीरेन्द्रकुमार सिंह
सुनाबेड़ा (उड़ीसा)

डॉ० बच्चन सिंह का 'बोलती हैं तो चुप नहीं होती किताबें' शीर्षक लेख दिल को छू गया। व्यक्तिगत पुस्तकालयों को सहेजना कठिन हो गया है और होता जा रहा है। हजारों ऐसे पुस्तकालय उपेक्षित हो रहे हैं जिनकी सुधि लेने वाला कोई नहीं है। पुस्तकों के साथ सोने-जागने वाला व्यक्ति ही समझ सकता है कि पुस्तकों के नहीं होने या दीमक चाट जाने की 'ट्रैजेडी' क्या होती है?
—विश्वनाथ पाण्डेय, पटना

'भारतीय वाङ्मय' का अगस्त अंक मिला। इसकी प्रतीक्षा रहती है, ऐसा आदर और आकर्षण आपके इस प्रकाशन ने बना रख है। हर अंक में कुछ न कुछ ऐसा रहता है जिसके पढ़ने में नहीं आने पर, लगता है, स्वयं अपने में कमी रह जाती।

अग्रलेख जिसमें पीड़ा है—'यह गाँधी का नहीं, मैकाले का भारत है', स्वाधीनता दिवस के महीने में और हिन्दी दिवस के महीने के ठीक पहले छपा है। यह जो संयोग है स्वाधीनता और हिन्दी का उसके दो रूप हैं—स्वाधीनता आई थी तो उस भाषा का आदर होना चाहिये था जिसने स्वतंत्रता संग्राम में शस्त्र का सर्वाधिक काम किया। दूसरी ओर, जब विदेशी भाषा का आधिपत्य है, देश की स्वतंत्रता अपंग है। परन्तु यह सब कहा खूब जाता है, परिणाम नहीं निकल रहा। निष्प्रभाव रहने की यह अवस्था खूब सही जा रही है, सबने अपने-अपने मतलब निकालने के रास्ते निकाल लिये हैं, चाहे पथभ्रष्ट होने का दोष लगता रहे। आपने भी यही कहा है, मैं भी कह रहा हूँ—पथभ्रष्ट जब स्वतंत्रता है, उसका लाभ लोगों को मिल कैसे सकता है? इसलिए ही अभाव, असमानता, असंतोष है—इसका कारण और परिणाम दोनों अंग्रेजी का आधिपत्य है।

किताबों के बारे में जो पृष्ठ पहले-दूसरे पर कहा गया है, वह बड़ा दिशाबोधक है। मैंने तो अपनी पुस्तकें कुछ पुस्तकालयों में पहुँचायी हैं—पढ़ी नहीं जायेंगी तो भी सुरक्षित तो रहेंगी।
—राजेन्द्र शंकर भट्ट, जयपुर

'भारतीय वाङ्मय' पुस्तक और साहित्य के अनेक पक्षों को छूता हुआ यह पत्र सजग पाठक के लिए पर्याप्त सामग्री सोचने के लिए प्रस्तुत कर देता है।

सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण चर्चा नष्ट होती पुस्तकों / पुस्तकालयों के विषय में लगी जो वक्त के दरवाजे पर बार-बार दस्तक दे रही है और जिसे प्राय: सब अनसुना कर रहे हैं। हस्तलिखित पुस्तकें क्या पुन: प्राप्त हो सकती हैं? गईं सो गईं। सी०डी० / डी०वी०डी० आदि के बावजूद पुस्तकें अपने वास्तविक स्वरूप में मूल्यवान रहेंगी अत: उनकी प्रतिष्ठा रहनी चाहिए। इस विषय में डॉ० शुकदेव सिंह का लेख (चुप हो रही हैं किताबें) बहुत सामयिक और मार्मिक है। सरकारें जहाँ लाखों / करोड़ों रुपया बेकार के थोथे नुमायशी आयोजनों / स्कीमों पर खर्च करती रहती हैं वहाँ क्या इन दुर्लभ ग्रन्थों के संरक्षण की कोई सरकारी / गैर सरकारी योजना नहीं बना सकती? प्रकाशन गृहों, विद्वानों, लेखकों, विश्वविद्यालयों या अन्य संस्थाओं की एक मिली-जुली टीम के सुपुर्द करके इस हेतु पर्याप्त धन / अनुदान देकर वह राष्ट्रहित का बहुत बड़ा काम कर सकती है। चलिये, कम से कम आपके पत्र से यह आवाज तो गूँजी!
—डॉ० ओमप्रकाश शर्मा 'प्रकाश', नई दिल्ली

'भारतीय वाङ्मय' का प्रत्येक अंक उपयोगी सूचनाएँ देता है।

भरतपुर की हिन्दी समिति के मुख्य भवन की कुर्की चिन्ता का विषय है। राजस्थान सरकार तथा हिन्दीसेवी संस्थाओं को आगे आना चाहिए और महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों एवं पाण्डुलिपियों की रक्षा करनी चाहिए। सन् 1959 में अपने शोध कार्य के दौरान मैंने भी समिति के पुस्तकालय में अध्ययन किया था। **—डॉ० सुधेश,** नई दिल्ली

'भारतीय वाङ्मय' के माध्यम से हिन्दी साहित्य को देशव्यापी गतिविधियों की संक्षिप्त जानकारी मिलती है। आपका यह प्रयास सराहनीय और महत्त्वपूर्ण है। **—डॉ० मालम सिंह**
हिन्दी अधिकारी
नवोदय विद्यालय समिति, नई दिल्ली

मुझे नियमित रूप से 'भारतीय वाङ्मय' के अंक मिल रहे हैं। आभारी हूँ। सितम्बर 05 के अंक का सम्पादकीय जबरदस्त है। 'व्याकरण की जरूरत' पढ़कर अच्छा लगा। आपने निडरता को शिक्षा नीति पर प्रकाश डाला है।
—चन्दूलाल दूबे, सम्पादक, भारतवाणी,
धारवाड़ (कर्नाटक)

चिन्तन-मनन

वंदेमारतम्

'वेदेमातरम्' भारत माता का दिव्य, कवच, साकार सगुण रूप दिख रहा था। बंगाल भारतीय राष्ट्रवाद का केन्द्र था। 19वीं शताब्दी के खत्म होते-होते देश की सांस्कृतिक-राजनीतिक चेतना में स्वदेशी तत्त्व की भरमार हो गई। देवी उपासक बंगाल में बंकिम की 'त्वं हि दुर्गा दश प्रहरण धारिणी' भारतमाता थीं। 1896 से 1922 तक कांग्रेस के प्रत्येक अधिवेशन के दौरान 'वंदेमातरम्' राष्ट्र की तेजस्वी अभिव्यक्ति था। काशी के प्रख्यात गायक संगीतकार विष्णु दिगम्बर पुलस्कर ने मंच पर वंदेमातरम् गाया। 1937 की कार्यसमिति में वंदेमातरम् खण्डित हो गया।

आरक्षण आरक्षण

आरक्षण योग्यता, क्षमता और प्रतिभा को कुण्ठित करता है, उसकी प्रतिष्ठा गिराता है। जिसका हक मारा जाता है, उसे कुंठित और विद्रोही बनाता है। योग्यता, प्रतिभा और क्षमता को दबाकर कोई भी राष्ट्र न तो विकास कर सकता है और न एक रह सकता है।

महाभारत

''जो कुछ इस विश्व में है वह महाभारत में मौजूद है। जो उसमें नहीं है वह विश्व में भी कहीं नहीं है।''

महाभारत के सभी पात्रों में वर्तमान का वह मनुष्य विद्यमान है जो हर कालखण्ड में लिप्सा, घृणा, स्वार्थ, संवेदना, ममता, क्रोध, षडयंत्र एवं लोभ आदि से सराबोर रहा है, जो मनुष्य की मूल वृत्तियाँ हैं और जिनसे वह आसानी से अलग नहीं रह पाता। महाभारत के समय मानवीय गुण दोषों का वह समग्र संसार आज भी विद्यमान है, जो कभी राष्ट्र, समाज और व्यवस्था के महाभारत का भावी सर्जक बनता है। **—हृदयनारायण दीक्षित**

एक साहित्यिक संस्मरण

जब भारतेन्दु का अभिनय देखकर गोरी मेम रो पड़ी

यह घटना 1884 साल के दिसम्बर मास की है। बलिया (उत्तर प्रदेश) के कलेक्टर राबर्ट्स मुंशी चतुर्थीलाल के निमंत्रण पर भारतेन्दु हरिश्चन्द्र अपने नाटकों का मंचन करने के लिए वहाँ गये। हिन्दी में नाटक विधा के भारतेन्दु सूत्रधार थे यह तो हम जानते हैं किन्तु बहुत कम लोगों को पता होगा कि वे स्वयं एक कुशल अभिनेता भी थे। बलिया में वे अपनी पूरी मण्डली के साथ आये और नील देवी, भारत जननी तथा हास्य प्रहसन 'अंधेर नगरी' का मंचन किया। उन दिनों रंगमंच की तकनीक विकसित नहीं थी और न आज की सी सुविधाएँ नाटक करनेवालों को सुलभ थीं। दूकानों के आगे रखे जाने वाले तख्तों को जोड़कर मंच बनाया जाता था और बजाजों के यहाँ से लाये गये रंग-बिरंगे कपड़ों के थान पर्दों का काम करते। अब '**सत्य हरिश्चन्द्र**' को रंगमंच पर लाने का विचार बना। भारतेन्दु का यह प्रिय नाटक था। नायक और लेखक में नाम साम्य तो था ही।

इस नाटक में मृतकों के वस्त्र लेने वाले डोमराज के नौकर का किरदार खुद भारतेन्दु ने निभाया था। ऋषि विश्वामित्र ने छलबल से न केवल राजा हरिश्चन्द्र का राज्य छीना, उन्हें दक्षिणा के नाम पर राजा और रानी शैव्या को डोमराज का दासत्व ग्रहण करने के लिए मजबूर किया। किन्तु सत्यवादी राजा की अटल प्रतिज्ञा थी।

बेचि देहि दारा सुवन होय दास हू मंद।
रखि हैं निज बचन सत्य करि अभिमानी हरिचंद॥

यहाँ तो स्थिति यह आ गई कि जिस ब्राह्मण के यहाँ महारानी शैव्या दासी बनकर रहीं, वहाँ रोहित कुमार को साँप ने डस लिया। दाहकर्म के लिए रानी स्वयं पुत्र के शव को लेकर श्मशान में गईं। डोम राजा के प्रतिनिधि बने भारतेन्दु ने जब रानी से आधा कफन कर के रूप में माँगा तो रानी की व्याकुल आँखें अश्रु धाराएँ बहाने लगीं। कर्त्तव्यनिष्ठ राजा (भारतेन्दु) ने कठोर बन कर कहा कि आधा कफन दिये बिना दाह संस्कार नहीं किया जायेगा। महारानी शैव्या का दुःख असहनीय था तथापि उसने शव पर से कफन हटा कर आधा फाड़ना चाहा। हतभाग्य राजपुत्र को पूरा कफन भी नसीब नहीं हो रहा था।

इस करुणा विगलित दृश्य को जब भारतेन्दु ने अपने सशक्त और प्रभावी अभिनय से साकार किया, दर्शक दीर्घाएँ आकुल-व्याकुल हो गईं। अग्रिम पंक्ति में बलिया के अंग्रेज कलेक्टर की मेम तथा अन्य गौरांगनाएँ अविरल अश्रु धाराएँ बहाने लगीं। उन्होंने नाटक के संयोजक मुंशी चतुर्थीलाल से नाटक को आगे बढ़ाने के लिए कहा। इस पर मुंशीजी ने मंच पर खड़े भारतेन्दु से संकेत में कहा कि मेम साहिबान बहुत रो रही हैं। उनसे रानी की व्यथा देखी नहीं जाती। सीन को आगे बढ़ायें।

अगला सीन तो नाटक की समाप्ति का ही था। शैव्या का कफन फाड़ना, शव को चिता पर रखना, आकाश में देवताओं का आना, पुष्प वृष्टि तथा मंगल ध्वनि। त्रिदेवों का सशरीर उपस्थित होकर राजा (भारतेन्दु) को आशीर्वाद देना। बाबा विश्वनाथ और काशी के कोतवाल लाट भैरव का आना और राजा का अभिनन्दन करना। नाटक का इस प्रकार सुखपूर्वक अन्त देखकर मेमों के चेहरों पर मंद स्मित रेखाएँ छा गईं।

—डॉ० भवानीलाल भारतीय

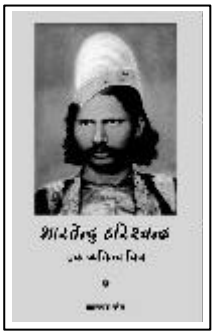

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र
एक व्यक्तित्व चित्र

ज्ञानचंद जैन

प्रथम संस्करण : 2004

ISBN : 81-7124-361-4

विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी

मूल्य : 190.00

अच्छी किताबें पढ़ना सुसंस्कृत होने की पहचान

जब तक मैं विद्यार्थी था, मेरे अध्यापक जिन लेखकों और किताबों की तारीफ करते थे, उन किताबों को किसी तरह प्राप्त करके पढ़ता था। पैसे नहीं होते थे, फिर भी किसी तरह उन किताबों को खरीदता था। अच्छी किताबों के बारे में जानने का तरीका यह होता है कि आप अगर कोई अच्छी विचारपरक किताब पढ़ें तो उस किताब में कई अच्छी किताबों और लेखकों का जिक्र मिलेगा। एक अच्छे वक्ता का भाषण सुनें तो उसमें वे कई अच्छी किताबों और लेखकों का नाम लेते हें। आप मित्रों, अध्यापकों से बात करते हैं तो वे कई अच्छी किताबों की चर्चा करते हैं। मैं उन सब किताबों को ढूँढ़-ढूँढ़कर पढ़ता हूँ। मुझे 'लस्ट फार लाइफ' भीष्म साहनी ने आग्रहपूर्वक पढ़ाया था। अच्छी किताबें अपने नजदीक बुलाने के पहले एक संयम, एक अनुशासन की शर्त रखती हैं। पूरे समाज में जा सकने की क्षमता रखते हों, तभी एक अच्छी किताब के पास जा सकते हैं। फैशन में अच्छी किताब नहीं पढ़ी जा सकती। एक सभ्य और सुसंस्कृत व्यक्ति ही अच्छी किताब पढ़ सकता है। अच्छे शब्द का जो प्रभाव होता है दूरगामी होता है, कालातीत होता है।

जब तक ऊर्जावान, सभ्य और सुसंस्कृत रहने की इच्छा रखने वाले लोग रहेंगे, किताबें लिखी जाएँगी और पढ़ी जाएँगी। **—विश्वनाथ त्रिपाठी**

गाँवों में ज्ञान केन्द्र पुस्तकालय

राष्ट्रपति एपीजे अब्दुल कलाम ने 27 अगस्त 2005 को 11वें दिल्ली पुस्तक मेले का उद्घाटन करते हुए कहा—पुस्तकें हमारी जीवन यात्रा में हमारा मार्गदर्शन करती हैं। प्रयोग के तौर पर दूरस्थ अंचल के 100 गाँवों में पंचायत के सहयोग से कम से कम एक हजार पुस्तकों का पुस्तकालय प्रारम्भ करना चाहिए। इसके अनुभवों से देश के 2.3 लाख गाँवों तक इस परियोजना का विस्तार करना होगा।

उन्होंने कहा—ग्राम पंचायतों को ऐसे ज्ञान केन्द्रों के रूप में विकसित करना चाहिए जिसमें टेलीफोन और इंटरनेट की सुविधा हो ताकि वे कम्प्यूटर आधारित पुस्तकालय बन जायँ। ज्ञान केन्द्रों पर कृषि, शिल्प और ग्राम उद्योगों के बारे में सूचनाओं के साथ-साथ गाँव के इतिहास, संस्कृति, परम्परा और परम्परागत चिकित्सा पद्धति सम्बन्धी सामग्री संगृहीत करनी चाहिए।

गुप्तयुगीन केन्द्रीय प्रशासन

डॉ० सीमा मिश्रा

प्रथम संस्करण : 2005

ISBN : 81-7124-440-0

विश्वविद्यालय प्रकाशन वाराणसी

मूल्य : 280.00

मौर्य युग के पश्चात् भारतीय इतिहास में नवनिर्माण एवं नवोत्कर्ष के प्रतीक जिस महान् युग की प्रतिष्ठापना हुई उसे गुप्तयुग के नाम से जाना जाता है। यह युग अपनी राजनीतिक सम्प्रभुता, सर्वोच्च सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक एवं वैज्ञानिक सम्पन्नता, आर्थिक क्षेत्र में स्वायत्तता तथा विकेन्द्रीभूत क्षमताओं के चतुर्दिक प्रस्फुटन के लिये भारतीय इतिहास में 'स्वर्णयुग' के नाम से विख्यात है।

गुप्त युग के यशस्वी सम्राटों के नेतृत्व में गुप्त साम्राज्य की स्थापना उस समय हुई, जब मौर्य जैसे शक्तिशाली एवं सुदृढ़ साम्राज्य के पतन के पश्चात् तत्कालीन भारत में अशांति एवं अंधकार का युग प्रारम्भ हो चुका था, तथा देश में अनेक देशी एवं विदेशी राजसत्तायें स्थापित होने के लिए प्रयासरत होने लगी थीं। ऐसी स्थिति में इस युग के शासकों ने अपने कुशल नेतृत्व में इन राज्यों पर अंकुश लगाते हुए तात्कालिक भारत की बिखरी शक्ति को एकत्रितत करने का प्रयास तथा शासन को एक सूत्र में पिरोने का कार्य करते हुए अशांति एवं अराजकता का अन्त करके अपने युग की महत्तम शक्ति कहलाने का गौरव प्राप्त किया।

पुस्तक-प्रकाशन व्यवसाय या मिशन

क्या पुस्तक-प्रकाशन व्यवसाय है या मिशन? यह प्रश्न सुनने पर चौंकानेवाला है। परन्तु वस्तुस्थिति पर दोनों सटीक हैं। सच यह है कि विकसित देशों के लिए पुस्तक-प्रकाशन व्यवसाय है, किन्तु भारत जैसे विकासशील देशों के लिए मिशन। यह सवाल राजपाल एण्ड सन्ज़ के आदिपुरुष महाशय राजपाल के भविष्यद्रष्टा पुत्र दीनानाथ मलहोत्रा को उस समय उनके मस्तिष्क में उठा जब वे अपने पिता की विरासत से प्रेरित होकर पुस्तक-प्रकाशन के क्षेत्र में पदार्पण कर रहे थे। पंजाब विश्वविद्यालय से एम०ए० (अर्थशास्त्र) की परीक्षा में प्रथम स्थान प्राप्त करने के बाद वे कश्मीर के एक प्रतिष्ठित महाविद्यालय में प्राध्यापक नियुक्त हुए। उनकी प्रवृत्ति शिक्षा-क्षेत्र में काम करने की थी, किन्तु स्थितिवश और अपने अनुज विश्वनाथजी के आग्रह पर उन्होंने पुस्तक-प्रकाशन के क्षेत्र में पैर रखा।

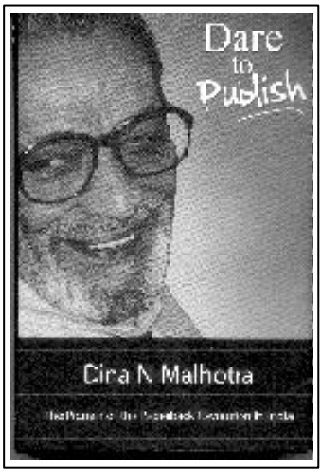

भारत की आजादी के कुछ ही वर्ष बाद उन्होंने सोचा कि किस प्रकार की पुस्तकें प्रकाशित की जाएँ। क्या पुरानी परम्परा को अपनाई जाए या शिक्षा-क्षेत्र में राष्ट्रीयता को उद्घोषित करनेवाली पुस्तकें निकाली जाएँ। उन्होंने प्रकाशन को मिशन के रूप में ग्रहण किया। इसके ताने-बाने तैयार किए। दीनानाथजी भारतीय पुस्तक-प्रकाशन के क्षेत्र में प्रथम पुरुषार्थी व्यक्ति हैं जिन्होंने प्रकाशन-क्षेत्र में पेपरबैक की नींव डाली। यह ऐसी अवधारणा थी जो अन्यान्य प्रकाशकों को कठिन और कठोर प्रतीत हो रही थी। पुस्तक-प्रकाशन के क्षेत्र में यह अविस्मरणीय क्रान्ति थी। दीनानाथजी को इसमें सन्तोषजनक सफलता मिली। उन्होंने 'हिन्द पाकेट बुक्स कम्पनी' की स्थापना की। स्मरणीय है कि पेपरबैक पुस्तक का प्रचलन जर्मनी में बहुत पहले हो चुका है। इंगलैण्ड में पेंगुइन बुक्स के संस्थापक सर एलेन लेन ने सन् 1923 में पेपरबैक पुस्तक का प्रकाशन शुरू किया था।

दीनानाथजी की हाल में प्रकाशित अंग्रेजी पुस्तक 'डेयर टू पब्लिश' (प्रकाशन का साहस) पुस्तक प्रकाशकों के लिए ज्ञानकोश है। उन्होंने यूरप के सात देशों की यात्रा से इस व्यवसाय का गहराई से अध्ययन किया। यूनेस्को के सलाहकार के रूप में उन्होंने अमेरिका, कोलम्बिया (दक्षिण अमेरिका), जापान, कोरिया, सिंगापुर, थाईलैण्ड और मलेशिया के बड़े-बड़े प्रकाशन-संस्थानों में इस व्यवसाय की बारीकियों का अध्ययन किया। वे भारत के पहले प्रकाशक हैं जिन्होंने विदेशों में प्रकाशन के अनेक पहलुओं की जानकारी हासिल की।

दीनानाथजी ने दुनिया के तमाम प्रकाशकों के कामकाज के तरीके देखने तक ही अपने को सीमित नहीं रखा, बल्कि उनसे गाढ़ी दोस्ती बनाई। उनका मानना है कि परमात्मा ने मानवमात्र को दोस्ती का सर्वाधिक उपहार दिया है। इसके साकार होने में कुछ वक्त लगता है। किन्तु किसी व्यक्ति को पहचानने में जल्दबाजी न करें।

दीनानाथजी उर्दू के मशहूर शायर निदा फजली का यह शेर गुनगुनाते रहते हैं—

हर आदमी में होते हैं दस बीस आदमी,
जिसको भी देखना हो, दो चार बार देखिए।

प्रस्तुत पुस्तक एक ऐसे अनुभवशील प्रकाशक के संस्मरणों से भरपूर है जिसने भारत में पेपरबैक की क्रान्ति की। कई नजरों से यह पुस्तक संग्रहणीय और पठनीय है। पुस्तक पारिवारिक परिचय से शुरू होती है। इसे आत्म-कथा भी कहिए तथा देश-विदेशों के रोचक संस्मरण। जिस कोण से देखिए, यह पुस्तक दिल और दिमाग पर ऐसी छाप छोड़ती है, जो जल्दी धूमिल नहीं होती। फलोरेंस (इटली) के विश्वस्तरीय प्रकाशक सम्मेलन में ही नहीं, लन्दन के प्रकाशन-सम्मेलन में दीनानाथजी ने भारत का प्रतिनिधित्व किया और भारत के पुस्तक-प्रकाशन के व्यवसाय से सम्मेलन को सुपरिचित कराया। जो कुछ हो, उनके कामकाज के तरीकों से प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू भी प्रभावित थे। उन्होंने इनकी कुछ कठिनाइयाँ दूर भी कराई।

दीनानाथजी का जन्म सन् 1923 में हुआ। उनके पिता महाशय राजपालजी की शहादत सन् 1929 में हुई जब वे छह वर्ष के थे। उन्होंने पिता की विरासत और उनके पद-चिह्नों पर चलकर अपने को व्यवसाय में शिखरपुरुष बनाया। 82 वर्ष की उम्र में उन्होंने अपने पौत्र चन्द्रशेखर पर अपने प्रकाशन-संस्थान 'क्लेरियन बुक्स' के अनुभाग 'हिन्द पाकेट बुक्स (प्रा०) लिमिटेड' का उत्तरदायित्व सौंपकर सेवा-संन्यास ले लिया। उनके व्यवसाय की यह चौथी पीढ़ी है।

—दिव्यचक्षु शास्त्री

डेयर टू पब्लिश

लेखक : **दीनानाथ मलहोत्रा**

प्रकाशक

क्लेरियन बुक्स (हिन्द पाकेट बुक्स का अनुभाग)

जे-40, जोरबाग लेन, नई दिल्ली-110003

पृष्ठ : 251 मूल्य : 295 रुपये

अंतरा

विश्वनाथ

प्रकाशक

राजपाल एण्ड सन्ज़

कश्मीरी गेट, दिल्ली

मूल्य : 195.00

प्रकाशक विश्वनाथजी का यह कविता संग्रह देखकर सुखद आश्चर्य होता है, लगता है विभिन्न साहित्यकारों की संवेदनशील रचनाओं को पढ़ते-देखते उन्होंने अन्तर्मन में झाँकना शुरू किया। 'अंतरा' की कविताएँ आत्मपरक हैं, इनमें आध्यात्मिक चिन्तन है।

पुस्तक का आमुख विशिष्ट विद्वान् डॉ० लक्ष्मीमल सिंघवी ने लिखा है। उनका कथन है—विश्वनाथजी की कविताओं में जीवन के अमृतोत्सव की सहज अनुभूति और मार्मिक अन्तर्दृष्टि की झलक देखने को और आहट सुनने को मिली। 'अंतरा' की कविताएँ विश्वनाथजी के सांस्कृतिक बोध की भी अभिव्यक्ति हैं। 'महाभारत' के संदर्भ में आपकी 4 कविताएँ वर्तमान को साक्षात कराती हैं—

जीवन के अन्तिम प्रहर में
परिवार के पितामह को
शर-शैया पर लेटना ही पड़ता है।

अपने से बातें करतीं ये पंक्तियाँ आत्म स्वीकृति हैं।

दस्तक की आवाज
''कौन हो भाई''
चले आओ

फिर दस्तक
''भाई, कौन हो तुम
अन्दर चले आओ''

अन्दर तो हूँ
कब से दस्तक दे रहा हूँ
तुम सुनो, तब न

डॉ० सिंघवी ने 'अंतरा' का कितना सही आकलन किया है—''प्रस्तुत संग्रह में जहाँ अधिकांश कविताओं में अन्तर्मन की सच्चाई का स्वगत और स्वीकार है, आत्मबोध की दार्शनिकता की अभिव्यक्ति है, वहाँ रहस्यवादी अध्यात्मक भी है।''

कब आएगा
मेरे हृदय में वसंत
कब होगा
देश की तंद्रा का अंत

'अंतरा' ऐसी काव्य रचना के लिए विश्वनाथजी का अभिनन्दन, अभिवादन।

पुस्तक समीक्षा

काशी में मोक्षकामी प्रवासी विधवाएँ

सत्यप्रकाश मित्तल
रामलखन मौर्य

प्रथम संस्करण : 2005
ISBN : 81-7124-409-2
विश्वविद्यालय प्रकाशन
वाराणसी
मूल्य : 200.00

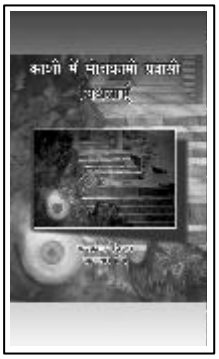

काशी की विधवाओं का समाजशास्त्रीय अध्ययन

संजय गौतम

काशी मोक्ष नगरी के रूप में प्रसिद्ध है। देश के कोने-कोने से लोग अन्तिम समय में यहाँ इस उद्देश्य से आते रहे हैं कि यहीं देह त्याग कर मोक्ष प्राप्त करें। विधवा स्त्रियों का तो यह आश्रम स्थल ही बन गया, लेकिन विडम्बना यह है कि इन स्त्रियों में अनेक ऐसी भी हैं, जो परिवार द्वारा उपेक्षित हो जाने के कारण यहाँ चली आईं अथवा धोखे से पहुँचा दी गईं। ये स्त्रियाँ भी यहाँ के धार्मिक जीवन में रच-बस कर जीवन जीने लगीं एवं ईश्वर के प्रति समर्पण भाव से यथासम्भव अपनी जीविका भी चलाने लगीं। प्रस्तुत पुस्तक इन्हीं विधवाओं के समाजशास्त्रीय अध्ययन का प्रयास है। 1975-76 में वाराणसी के निर्मलकुमार घोष प्रतिष्ठान ने काशीवासी विधवाओं के सामाजिक एवं आर्थिक जीवन का अनुभवाश्रित अध्ययन किया था। इसके लिए भारतीय समाज विज्ञान अनुसन्धान परिषद का आर्थिक सहयोग भी प्राप्त हुआ था। पुस्तक के मूल में यही अध्ययन है साथ ही अन्य तीर्थों का अध्ययन भी शामिल किया गया है।

पुस्तक की भूमिका प्रसिद्ध मानव विज्ञानी डॉ० बैद्यनाथ सरस्वती ने लिखी है। समाजशास्त्री सत्यप्रकाश मित्तल ने चार अध्याय लिखे हैं— भारतीय नारी, ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, काशी नगर और तीर्थ, काशीवासी प्रवासी विधवाएँ : सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति तथा अन्य तीर्थों की डायरी। रामलखन मौर्य ने काशी की डायरी लिखी है, जिसमें प्रत्येक प्रकार की विधवाओं से बातचीत के आधार पर समस्या की गहराई में उतरने का प्रयास किया गया है।

पहले दो अध्ययनों में भारतीय नारी की ऐतिहासिक अवधारणा पर विचार किया गया है तथा एक तीर्थ के रूप में काशी के महत्त्व की चर्चा विस्तार से की गई है। तीसरे अध्याय में लेखक ने काशी की विधवाओं का आर्थिक एवं सामाजिक दृश्य प्रस्तुत किया है। अध्ययन का उद्देश्य बताते हुए उन्होंने कहा है, इस अध्ययन का उद्देश्य यह पता लगाना है कि विभिन्न प्रदेशों से काशीवास के लिए आयी विधवाओं का सामाजिक और आर्थिक जीवन कैसा है और उनकी गुजर-बसर कैसे होती है, अर्थात् उनके लौकिक जीवन की क्या समस्याएँ हैं। काशीवास के लिए घर छोड़ने के पीछे क्या प्रेरणा है और आने के बाद प्रेरणा का क्या रूप है और सबसे मुख्य बात यह है कि काशी उनके जीवन को कैसा रंग देती है और काशी के स्वरूप में उनका क्या अंश है। (पृष्ठ 29)

इस उद्देश्य से सभी जाति-वर्ग मुहल्ले का अध्ययन किया गया। तत्कालीन अध्ययन के हिसाब से विधवाओं की संख्या लगभग चार हजार पाई गई, जिसमें बंगाली 2000, नेपाली एक हजार, मैथिल पाँच सौ, मारवाड़ी सौ, मराठी पचास, तमिल पचास, कर्नाटक पचास, भोजपुरी तथा कान्यकुब्ज एक सौ पचास, मध्य प्रदेश तथा अन्य 100 थीं। इसी अध्ययन में विभिन्न दृष्टिकोणों से सारणी प्रस्तुत की गई है।

पुस्तक का सबसे महत्त्वपूर्ण और विस्तृत हिस्सा 'काशी की डायरी' है। इसमें विधवाओं से बातचीत के दौरान हुए अनुभवों को डायरी के रूप में प्रस्तुत किया गया है। इस डायरी में विधवाओं का दुख दर्द अत्यन्त संवेदनीय भाषा में उजागर हुआ हे। एक बंगाली विधवा का कहना था, मेरे भाई ने मुझे नरक में डाल दिया, बुड्ढ़े से विवाह कर दिया, उस समय मेरी उम्र 11 वर्ष थी, ओर पति की उमग्र 35 वर्ष की थी। इसी से जीवन में फिर कभी भाई का मुँह नहीं देखा। पिता मर चुके थे, माता को भाई ने समझा दिया, सबने मिलकर मुझे नरक में ढकेल दिया। उसके साथ मैंने ऐसे जीवन गुजारा जैसे नरक भोगा हो। अन्त में वह दमे का रोगी होकर मर गया। इस विधवा का पुत्र भी अपनी पत्नी के साथ कलकत्ता में रह रहा था और कभी खोज खबर नहीं लेता था। यह वृद्धावस्था में भी काम करके खा रही थी और किसी प्रकार सिर्फ इस संतोष के साथ रही थी कि उसे काशी में मुक्ति मिलेगी। मौर्याजी ने लिखा है, सोचता हूँ, यदि यह काशी न होती, इसके साथ जुड़ा मुक्ति का भाव न होता तो एक सी अबलाएँ इस अल्पप्रवंचना सरीखे तथाकथित संतोष से भी वंचित रहतीं।

यहाँ चिन्तन का दूसरा पक्ष भी है। यदि यह अन्तर्निहित धार्मिक व्यवस्था न होती तो सम्भव था विधवाओं की, अबलाओं की यह मंत्रणा मुखर होती, इस व्यवस्था के प्रति सम्भवत: वे विद्रोह करतीं। किन्तु काशीवास की इस व्यवस्था ने एक अनूठे संतोष की अफीम देकर उन्हें संगठित होने एवं व्यवस्था के विरुद्ध आवाज उठाने से विरत कर दिया। (पृष्ठ 94)

इसी तरह इस डायरी में मौर्याजी का चिंतनशील मन निरन्तर सक्रिय है। उन्होंने अपनी डायरी में प्राय: हर तरह की विधवाओं का अध्ययन कर उनकी समस्या को समझने का प्रयत्न किया है और मानवीय सामाजिक एवं धार्मिक दृष्टिकोण से उनकी पीड़ा को उजागर किया है। इसे पढ़कर उन्हीं अनुभवों के गुजरना है।

'गाण्डीव' से

सम्प्रेषण और रेडियो-शिल्प

विश्वनाथ पाण्डेय

प्रथम संस्करण : 2005
ISBN : 81-7124-408-4
विश्वविद्यालय प्रकाशन
वाराणसी
मूल्य : 250.00

अनुभवजनित गम्भीर सामग्री

हृषीकेश सुलभ

1927 को इण्डियन ब्रॉडकॉस्टिंग कम्पनी के बम्बई केन्द्र का उद्घाटन करते हुए तत्कालीन वायसराय लार्ड इरविन ने कहा था, ''प्रसारण के विकास के लिए भारत में विशेष सम्भावनाएँ हैं। इसके क्षेत्र का विस्तार और उसमें निहित दूरियाँ इस देश को प्रसारण के लिए बड़ा उपयुक्त क्षेत्र बना देती हैं।... मनोरंजन और शिक्षा, दोनों दृष्टियों से इसकी सम्भावनाएँ अत्यधिक हैं...।''

आज कई दशकों के बाद लार्ड इरविन द्वारा संकेतित संभावनाओं का विस्फोट आजाद भारत में हम देख सकते हैं। रेडियो प्रसारण की दुनिया, एक हलचल भरी दुनिया में तब्दील हो चुकी है। मीडिया-क्रान्ति के इस तुमुल कोलाहल के बीच, जिसके पीछे छूट जाने की आशंका व्यक्त की जा रही थी, रेडियो-प्रसारण नयी छवियों और नयी ध्वनियों के साथ हमारे बीच है। एफ एम का बुखार इन दिनों खूब चढ़ा हुआ है। देश भर में प्रसारण की शिक्षा देने वाले संस्थान कुकुरमुत्ते की तरह उग आये हैं, जो अंग्रेजी के कुछ रटे-रटाये सिद्धान्तों को चबाना सिखाते हें। 'सम्प्रेषण और रेडियो-शिल्प' विश्वनाथ पाण्डेय की सद्य: प्रकाशित पुस्तक ऐसे में ध्यान खींचती है। अनुभवजनित गम्भीर सामग्री सौंपते हुए विश्वनाथ पाण्डेय प्रसारण के क्षेत्र में आने वाले छात्रों के लिए क्रमवार रूप से वह सब कुछ इस पुस्तक में दर्ज करते हैं जिससे एक प्रसारणकर्ता का निर्माण हो सकता है। विकास और सम्प्रेषण के सम्बन्ध सम्प्रेषण के प्राचीन और अर्वाचीन रूप तथा सम्प्रेषण के लिए ध्वनि संसार का वैज्ञानिक अध्ययन और विश्लेषण प्रस्तुत करते हुए वे शब्दों के निर्माण और उत्पत्ति की गहन प्रक्रिया रोचक और सहज ढंग से पाठकों तक पहुँचाते हैं। पुस्तक के दूसरे खण्ड में वे आकाशवाणी के अपने अनुभवों को रचनात्मक विस्तार देने का प्रयास करते हैं। प्रसारण की विविध भंगिमाओं को

विश्लेषित करते हुए समाचार, संगीत, वार्ता, साक्षात्कार, नाटक, रूपक, विज्ञापन और उद्घोषणा—सबको विस्तार से समझाने के क्रम में वे प्रसारण में सम्प्रेषणीयता की कलात्मकता तथा इसके महत्व को सबसे ऊपर रखते हैं। उदाहरण के रूप में लम्बे उद्धरण या आलेखों को शामिल किया जाना, एक सामान्य पाठक को अरुचिकर लग सकता है, पर छात्रों के लिए यह बेहद उपयोगी है। विश्वनाथ पाण्डेय की इस पुस्तक का बहुलांश आकाशवाणी से सम्बन्धित उनके अपने अनुभवों पर आधारित है, पर वे नवोन्मेष के प्रति भी सजग हैं। शक्तिशाली जनसंचार माध्यम रेडियो में नवोन्मेष की तलाश करते हुए टेलीविजन के बरअक्स रेडियो प्रसारण की नयी युक्तियों की उन्होंने विस्तार से चर्चा की है। नवीनता को गति देने वाली तथा प्रयोग के नये दरवाजों को खोलने वाली कल्पनाशीलता को आधार बनाकर विश्वनाथ पाण्डेय छात्रों के लिए सीखने और सिखाने की नयी भावभूमि सौंपते हैं तथा कर्मभूमि के रास्तों को संकेतित करते हैं। यह सब करते हुए मनुष्य और उसके अंतरंग तथा बहिरंग दुनिया को वे नहीं भूलते। समाज हमेशा उनके सामने रहता है। मीडिया-क्रान्ति की इस चकाचौंध भरी दुनिया के वैभव के बीच से जबकि निरन्तर मनुष्य का लोप हो रहा है 'सम्प्रेषण और रेडियो-शिल्प' के पाठ में मनुष्य की उपस्थिति और उसका महत्व सुखद है। जनसंचार की दुनिया के रहस्यों और जादू को खोलती यह पुस्तक पाठकों को ज्ञान और नये अनुभव से समृद्ध करने में समथ है।

'*हिन्दुस्तान*' से

सम्पूर्ण पत्रकारिता

डॉ० अर्जुन तिवारी

प्रथम संस्करण : 2005

PAPERBACK

ISBN : 81-7124-412-2

HARDBOUND

ISBN : 81-7124-411-2

विश्वविद्यालय प्रकाशन

वाराणसी

मूल्य : अजिल्द : 280.00 सजिल्द : 400.00

'सम्पूर्ण पत्रकारिता' पत्रकारिता के प्रत्येक आयाम पर गहन विमर्श

संजय गौतम

'सम्पूर्ण पत्रकारिता' डॉ० अर्जुन तिवारी की सद्य: प्रकाशित पुस्तक है। डॉ० तिवारी अध्यापन कार्य में रत रहे एवं महात्मा गाँधी काशी विद्यापीठ में पत्रकारिता एवं जनसंचार विभाग के अध्यक्ष रहे। पत्रकारिता के शिक्षण के दौरान वह निरन्तर पत्रकारिता के विविध आयामों पर चिन्तन करते रहे और पत्रकारिता सम्बन्धी पुस्तकें लिखते रहे। पत्रकारिता सम्बन्धी विविध पक्षों पर डॉ० तिवारी ने महत्त्वपूर्ण कार्य किये हैं, जिनके प्रमाण के रूप में उनकी पुस्तकें हैं जैसे—स्वतंत्रता आन्दोलन और हिन्दी पत्रकारिता, आधुनिक पत्रकारिता, जनसंचार ओर हिन्दी पत्रकारिता, हिन्दी पत्रकारिता का वृहद् इतिहास, स्वतंत्रता संग्राम की पत्रकारिता और दशरथ प्रसाद द्विवेदी, हिन्दी पत्रकारिता और भावात्मक एकता, पत्रकारिता एवं राष्ट्रीय चेतना का विकास, इतिहास-निर्माता पत्रकार, कृषि ग्रामीण विकास पत्रकारिता, ई-जर्नलिज्म, मीडिया, माफिया और महात्मा गाँधी इत्यादि। डॉ० तिवारी के इस महत्त्वपूर्ण अवदान को देखते हुए ही उन्हें विभिन्न संस्थाओं द्वारा सम्मानित किया गया है। सेवानिवृत्ति के पश्चात भी डॉ० तिवारी वर्तमान पत्रकारिता को लेकर चिंतनशील हैं। वह पत्रकारिता को उसके ऐतिहासिक अवदान के परिप्रेक्ष्य में परखने के पक्षधर हैं। वर्तमान पत्रकारिता का मूल्यांकन भी वह पत्रकारिता की ऐतिहासिक कसौटी के आधार पर करते हैं। विभिन्न विश्वविद्यालयों में पत्रकारिता की शिक्षण व्यवस्था होने के पश्चात पत्रकारिता के समग्र पक्ष पर विचार प्रस्तुत करने की दृष्टि से इस पुस्तक का लेखन किया गया है। एक पुस्तक में पत्रकारिता का समग्र पक्ष प्रस्तुत किया गया है, जो पत्रकारिता के क्षेत्र में कार्यरत लोगों के लिए भी उतना ही महत्वपूर्ण है, जितना छात्रों के लिए। पुस्तक दस खण्डों में विभाजित है। प्रथम खण्ड—पत्रकारिता का स्वरूप विवेचन में पत्रकारिता की अवधारणा। पत्रकारिता की महत्ता, पत्रकारिता के विविध आयाम, साहित्यिक पत्रकारिता, कृषि पत्रकारिता, ग्रामीण पत्रकारिता शीर्षक के अन्तर्गत विचार किया गया है। द्वितीय खण्ड—पत्रकारिता का इतिहास में पत्रकारिता के इतिहास की भूमिका, उद्बोधन काल, जागरण काल, क्रान्ति काल, नवनिर्माण काल, सांप्रतिक पत्रकारिता, तृतीय खण्ड—समाचार जगत में समाचार की परिभाषा और उसके भेद, फीचर (रुपक), समाचार-पत्र, समाचार पत्रों का स्वामित्व शीर्षक, चतुर्थ खण्ड—सम्पादन में समाचार संकलन, समाचार लेखन, पृष्ठ सज्जा, सम्पादक मण्डल, पंचम खण्ड—संचार एवं जनसंचार में संचार का स्वरूप, संचार प्रक्रिया, जनसंचार की अवधारणा, जनसंचार के क्षेत्र, पारम्परिक जनसंचार, मौखिक संचार माध्यम, विकास और जनसंचार, छठे खण्ड—मीडिया एवं कानून में संविधान और अधिकार, प्रमुख प्रेस विधि, अवमानना, मानहानि, श्रमजीवी पत्रकार और समाचार पत्र, सातवें खण्ड में—प्रचार विज्ञापन एवं जनसम्पर्क में प्रचार, विज्ञापन, जनसम्पर्क, आठवें खण्ड—इलेक्ट्रॉनिक प्रौद्योगिकी में रेडियो, टीवी, फोटो, फिल्म, नवें खण्ड—संचार प्रौद्योगिकी में संचार प्रौद्योगिकी, मल्टीमीडिया, ई-जर्नलिज्म तथा दसवें खण्ड—मीडिया की आधुनिक प्रवृत्ति में पीत पत्रकारिता, संत्रस्त अभिव्यक्ति, खोजी पत्रकारिता तथा हिन्दी बनाम हिंग्रेजी शीर्षक के अन्तर्गत विचार किया गया है।

इस तरह कुल छियालीस अध्यायों में पत्रकारिता के विविध पक्षों पर विचार किए गए हैं। पुस्तक की व्यापकता का पता उल्लिखित अध्यायों से चल जाता है। डॉ० तिवारी की विशेषता यह है कि उन्होंने इन अध्यायों के अन्तर्गत विचार करते हुए ऐतिहासिक एवं वैश्विक सन्दर्भ देकर पुस्तक को रोचक बनाया है। इसके साथ ही साथ लोक में प्रचलित उक्तियाँ तथा साहित्यिक पंक्तियों को भी देते हुए भी सरसता पैदा की गई है। डॉ० तिवारी के लिए ''रेडीमेड की दुकानों की भाँति सजे-सजाए समाचार-विचार बेचना पत्रकारिता नहीं है और न तो यह शब्द, ध्वनि तथा चित्रों का व्यवसाय है। यह तो अभिव्यक्ति की गहन साधना है, जिससे वैचारिक क्रान्ति सम्भव है।''

पत्रकारिता की महत्ता के सम्बन्ध में उन्होंने जेम्स मैकडोनाल्ड का कथन उद्धृत किया है, 'पत्रकारिता को मैं रणभूमि से भी अधिक बड़ी चीज समझता हूँ। यह कोई पेशा नहीं, बल्कि पेशे से कोई ऊँची चीज है। यह एक जीवन है, जिसे मैंने अपने को स्वेच्छापूर्वक समर्पित किया है।' अकबर इलाहाबादी की उक्ति है—

खींचो न कमानों को न तलवार निकालो।
जब तोप मुकाबिल हो तो अखबार निकालो।

इस तरह की उक्तियों को बराबर उद्धृत करने के पीछे पत्रकारिता के मिशनरी पहलू की ओर लोगों का ध्यान आकर्षित करना ही है। डॉ० तिवारी पत्रकारिता के मिशन भाव को हमेशा ही केन्द्र में रखना चाहते हैं। इस दृष्टि से स्वतंत्रता आन्दोलन के दौर की पत्रकारिता भारतीय सन्दर्भ में स्वर्ण युग की तरह है, जिसका परिचय डॉ० तिवारी ने पूरे मनोयोग से कराया है। पुस्तक के अन्त में उन्होंने पत्रकारिता के समकालीन चेहरे को उजागर करने के लिए पीत पत्रकारिता के ऐतिहासिक सन्दर्भ का भी जिक्र किया है और बताया है कि इसकी शुरुआत 1893 में 'दि वर्ल्ड' पत्र में रंगीन मुद्रण की व्यवस्था से हुई। पीत पत्रकारिता को परिभाषित करते हुए उन्होंने कहा है, 'भयादोहन', पगड़ी उछाल और उत्तेजनापूर्ण अतिरंजित प्रकाशन ही पीत पत्रकारिता है। वर्तमान स्थिति पर उनका कहना है—''अखबार व्यापार एवं मुनाफे का साधन है। बाजारी ताकतें अखबार चला रही हैं। विज्ञापन एवं आमदनी के दूसरे तौर तरीके पत्र भी नीति को बनाते-बिगाड़ते हैं। किसी भी कीमत पर सर्कुलेशन चाहने वालों के लिए आदर्श, नैतिकता दूर की बात हो गई है। व्यावसायिकता, ग्लैमर, मार्केटिंग की ताकतें पत्र को अपनी अंगुलियों पर नचा रही हैं।'' इसी तरह उन्होंने भाषा पक्ष पर भी विचार किया है। यह पुस्तक अपने शीर्षक के अनुरूप ही पत्रकारिता के प्रत्येक आयाम को गम्भीरता से समेटने का प्रयास है।

शिक्षा के दार्शनिक एवं सामाजिक आधार

डॉ० के०पी० पाण्डेय

प्रथम संस्करण : 2005

ISBN : 81-7124-425-4

विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी

मूल्य : 250.00

'शिक्षा के दार्शनिक एवं सामाजिक आधार' के अन्तर्गत शिक्षा, शिक्षण एवं शिक्षा-व्यवस्थाओं के आधारभूत दार्शनिक एवं सामाजिक परिप्रेक्ष्य को उजागर करने का अभिनव प्रयास किया गया है। पुस्तक में भारतीय एवं पाश्चात्य दर्शन का परिचयात्मक एवं समीक्षात्मक विवरण प्रस्तुत करने के साथ उनके निहितार्थों को 21वीं सदी के उभरते वैश्विक सन्दर्भों में स्पष्ट किया गया है। सम्पूर्ण प्रस्तुति सरल, बोधगम्य एवं अभिव्यंजक शैली में अनुस्यूत है। इसके तहत कुल ग्यारह अध्याय हैं जिनमें शिक्षा एवं दर्शन के सम्प्रत्ययों का परस्पर सम्बन्ध, तत्त्वमीमांसात्मक, ज्ञानमीमांसात्मक एवं मूल्य मीमांसात्मक दृष्टि से विविध दार्शनिक भूमियों-भारतीय एवं पाश्चात्य का अन्वेषण, शिक्षा के उद्देश्यों, स्वरूपों, अविद्यालयीकृत समाज की संकल्पना, शिक्षा के समाजशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य में विविध सामाजिक मुद्दों का विश्लेषण, धार्मिक नैतिकतावाद, राष्ट्रीय एकता एवं अन्तर्राष्ट्रीय अवबोध के सम्बन्ध में मूल्यपरक शिक्षा की महत्ता एवं प्रसंगौचित्य, भारतीय सन्दर्भ में शैक्षिक अवसरों की समानता एवं उसके अवरोधक तथा शिक्षा-दर्शन एवं शिक्षा के समाज-शास्त्र से जुड़े शोध-मुद्दों पर प्रकाश डाला गया है जिससे शिक्षाशास्त्र से जुड़े विद्यार्थी एवं शिक्षकगण अपनी अर्न्तदृष्टि में अपेक्षित सूक्ष्मता ला सकें।

पर्यावरण शिक्षा एवं भारतीय सन्दर्भ

डॉ० के०पी० पाण्डेय
डॉ० अमिता भारद्वाज
डॉ० आशा पाण्डेय

प्रथम संस्करण : 2005

ISBN : 81-7124-442-4

विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी

मूल्य : 250.00

पर्यावरण सुरक्षा और पर्यावरण प्रदूषण की रोकथाम आज पूरे विश्व की चिन्ता का मुख्य विषय है, निरन्तर बढ़ती हुई जनसंख्या और प्रकृति के दोहन ने जीवमात्र के लिए भयावह स्थिति उत्पन्न कर दी है।

इसी दृष्टि से इस पुस्तक में इक्कीसवीं सदी में पर्यावरण सम्बन्धी उभरते नवीन सन्दर्भों की समस्याओं के प्रति सजग एवं सचेत करते हुए उससे उबरने की युक्तियाँ बताई गई हैं।

पुस्तक का मुख्य उद्देश्य अध्यापकों, शिक्षाशास्त्र के विद्यार्थियों तथा सेवापूर्व एवं सेवारत शिक्षकों की पर्यावरणीय जानकारी की अभिवृद्धि करना है। विभिन्न अध्यायों—पर्यावरण शिक्षा-भारतीय सन्दर्भ, पर्यावरण प्रदूषण, ओजोन अवक्षय, पारिस्थितिकी, जैव विविधता तथा इसका संरक्षण, पर्यावरण शिक्षा से तात्पर्य, उद्देश्य, आवश्यकता एवं महत्त्व, पर्यावरण शिक्षा के विविध संसाधन एवं उनके उपयोग : पर्यावरण शिक्षा के लिए रचना कौशल एवं शिक्षण विधियाँ, पर्यावरण शिक्षा में अभिक्रमित अनुदेशन की विधि : स्वरूप एवं दृष्टान्त, पर्यावरण शिक्षा में क्रियात्मक अनुसन्धान एवं पर्यावरण प्रबन्धन तथा सरकारी नीतियाँ—के अन्तर्गत पर्यावरण के प्रत्येक पक्ष पर गम्भीरतापूर्वक विचार किया गया है। ग्रन्थ में पर्यावरण सुधार एवं पर्यावरण गुणवत्ता संवर्धन हेतु चर्चित उपायों का विशेष उल्लेख भी किया गया है।

पर्यावरण शिक्षा के विविध कार्यक्रमों एवं योजनाओं को पूरे विश्व के परिप्रेक्ष्य में दृष्टिगत रखते हुए यह अनुशीलन प्रस्तुत किया गया है जिससे यह छात्रों और पर्यावरण के प्रति सजग पाठकों के लिए प्रेरणास्पद हो सके।

आषाढ़स्य प्रथम दिने

(कविता संग्रह)

मूल लेखक
नारायण सुमंत
अनुवादक
गिरीश काशिद

प्रथम संस्करण : 2005

ISBN : 81-7124-407-6

विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी

मूल्य : 80.00

जमीन के साथ मस्तिष्क जोतना भी जरूरी

मराठी साहित्य में तो संत तुकाराम से लेकर महात्मा फुले जैसे महानुभावों ने आरम्भ से ही कृषि एवं किसान को अपना आराध्य माना है। आगे चल कर र०वा० दिघे, गो०नी० दांडेकर, शंकर पाटिल, व्यंकटेश माडगूलकर, आनन्द यादव, विट्ठल वाघ, ना०धों महानोर, अनंत भालेराव आदि रचनाकारों ने ग्राम जीवन का गहराई से अंकन किया है।

कविता के सन्दर्भ में विचार किया जाए तो विट्ठल वाघ और ना०धो० महानोर ने मराठी कविता की आत्मा माटी से जोड़ने की प्रामाणिक कोशिश की है। कवि नारायण सुमंत इस परम्परा को व्यवहृत रखनेवाले नयी पीढ़ी के एक सशक्त हस्ताक्षर हैं। उनकी कविता केवल एक परम्परा का निर्वाह ही नहीं करती, अपितु बदलते परिवेश को पकड़ती है, एक तरह से सुमंत की कविता इस परम्परा की अगली कड़ी है। उनकी कविता प्रकृति-सौन्दर्य का रेखांकन नहीं करती तो कृषि संस्कृति का विध्वंस करनेवाले कारणों की छानबीन करती है।

उनकी कविता हृदय को कचोटनेवाली असह्य वेदनाओं का आक्रोश है। वह हृदय को स्पर्श ही नहीं करती अपितु मस्तिष्क को भी घायल करती है। उनकी कविताओं की बुनावट उत्तर-आधुनिक परिवेश में पनप रही संकरित कविता से अलग है। सुमंत स्वयं खेत में मशक्कत करनेवाले और किसानों की समस्याओं के भुक्तभोगी हैं। वे पहले किसान हैं कवि बाद में।

इस संग्रह में कवि अनेक अछूते सन्दर्भों को गहराई से तराशता है। कवि केवल किसानों की वेदनाएँ नहीं अलापता है, बल्कि समस्याओं का समाधान भी प्रस्तुत करता है। वह संघर्ष के लिए तैयार रहने का सन्देश देता है। अपनी लड़ाई स्वयं ही लड़ने पर बल देता है। वह जमीन के साथ 'मस्तिष्क जोतना' अनिवार्य मानता है। दलाली व्यवस्था का उन्मूलन और हामी के मूल्य का औषध वह समय की माँग मानता है।

इन कविताओं में न कोरा कल्पनाविलास है, न खानापूर्ति और न ही सैलानी प्रवृत्ति। कथ्य, संवेदना, भाषा और शैली की दृष्टि से इस संग्रह की कविताएँ अपनी निजी पहचान रखती हैं।

'*प्रभात खबर*', राँची से

भारतीय विश्वविद्यालयों

के

बी.एड., बी.पी.एड., बी. फार्मा, बी.ए., बी.काम., बी.एस-सी., एम.ए., एम.काम., एम.एस-सी., एम.सी.ए., एम.बी.ए., गृह विज्ञान पाठ्यक्रमानुसार

संदर्भग्रंथ, सामयिक तथा साहित्यिक विषयों पर
नवीनतम पुस्तकें
अंग्रेजी, हिन्दी तथा संस्कृत में

विश्वविद्यालय प्रकाशन

(तीन हजार वर्ग फुट में विशाल शोरूम)
चौक, वाराणसी

Phone & Fax : (0542) 2413741, 2413082
E-mail: sales@vvpbooks.com

पुष्टिमार्ग के जहाज

महाकवि

श्री सूरदास

सम्पादक :

भगवतीप्रसाद देवपुरा

प्रकाशक

साहित्य मण्डल

श्रीनाथद्वारा

मूल्य : 800.00

आजकल

(कविता संग्रह)

पोषणकुमार साहू

प्रकाशक

पोषणकुमार साहू

मूल्य : 25.00

समुद्र मंथन

ओमप्रकाश छारिया

प्रकाशक

ओमप्रकाश छारिया

अशोक रोड, श्री निकेत,

6ठवां माला, फ्लैट 6बी

कोलकाता-700 027

मधुशाला की मधुबाला

(काव्य ग्रन्थ)

राजेशकुमार सिंह

प्रकाशक

विश्व हिन्दी साहित्य

सेवा संस्थान

एल०आई०जी०-93, नीम

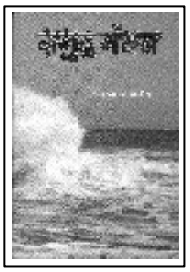

सरॉय, मुण्डेरा, इलाहाबाद

मूल्य : 10.00

खुशमिज़ाज लड़की

अक्षय गोजा

प्रकाशक

मीनाक्षी प्रकाशन

एम०बी०/2बी०

गली नं० 2, शकरपुर

दिल्ली - 110 092

मूल्य : 80.00

हिन्दी भाषा एवं साहित्य के विकास में ईसाई धर्म का योगदान

डॉ० एम० संतियागो

प्रकाशक

डॉयोसीस ऑफ वाराणसी

बिशप हाउस 45, वाराणसी

मूल्य : 150.00

अस्तित्व के स्वर

रमेशकुमार त्रिपाठी

प्रकाशक

उमेश प्रकाशन

100 लूकरगंज, इलाहाबाद-1

मूल्य : 100.00

'अस्तित्व के स्वर' दर्शन के विद्वान् रमेशकुमार त्रिपाठी की लघु कविताओं का संग्रह है। विभिन्न क्षणों, स्मृतियों-दृश्यों तथा विचारों को कुछ पंक्तियों में रूपायित करती इन कविताओं में कवि की सहज संवेदना अभिव्यक्त है। हाइकु शैली में लिखी गईं ये सूत्रात्मक कविताएँ कुछ पंक्तियों में बहुत कुछ कह जाती हैं।

ताजगी सुबह की ताजगी
दिखती लहर-लहर सी
चिड़ियों के कलरव में
ओस की हीरक बूँदों में
बच्चों के स्कूल गमन में।

नूतनता नूतनता की
लोलुप दृष्टि,
पतझर में
रम जाती
नग्न वृक्ष में।

कुछ पंक्तियों में पूरा दृश्य प्रस्तुत है।

भारतीय वाङ्मय

मासिक

वर्ष : 6 अक्टूबर 2005 अंक : 10

प्रधान सम्पादक

पुरुषोत्तमदास मोदी

सम्पादक

परागकुमार मोदी

वार्षिक शुल्क

रु० 50.00

अनुरागकुमार मोदी

द्वारा

विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी

के लिए प्रकाशित

वाराणसी एलेक्ट्रॉनिक कलर प्रिण्टर्स प्रा० लि० वाराणसी

द्वारा मुद्रित

E-mail : sales@vvpbooks.com
Website : **www.vvpbooks.com**

डाक रजिस्टर्ड नं० ए डी-174/2003 RNI No. UPHIN/2000/10104

प्रेस रजिस्ट्रेशन एक्ट 1807 ई० धारा 5 के अन्तर्गत

Licenced to post without prepayment at
G.P.O. Varanasi
Licence No. LWP-VSI-01/2001

सेवा में,

प्रेषक : (If undelivered please return to :)

विश्वविद्यालय प्रकाशन

प्रमुख प्रकाशक एवं पुस्तक विक्रेता

(विविध विषयों की हिन्दी, संस्कृत तथा अंग्रेजी पुस्तकों का विशाल संग्रह)

विशालाक्षी भवन, पो०बाक्स 1149

चौक, वाराणसी-221 001 (उ०प्र०) (भारत)

VISHWAVIDYALAYA PRAKASHAN

Premier Publisher & Bookseller

(BOOKS IN HINDI, SANSKRIT & ENGLISH FOR STUDENTS, SCHOLARS, ACADEMICIANS & LIBRARIAN)

Vishalakshi Building, P.O. Box : 1149
Chowk, VARANASI-221 001(U.P.) (INDIA)

☎:Off.:(0542)2421472,2413741,2413082,(Resi.)2436349,2436498,2311423 ●Fax:(0542)2413082